आत्मनोमोक्षार्थंजगद्धितायच

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्दभावधाराकी प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष-१८ मई-१९९९ अंक-५

रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजौभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चौपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची – (बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पाहुडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपूर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम–अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोपी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)
२०५. हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी—काराधीक्षक, गिरिडी

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. साधना-पथ (कविता)	श्री विवेक कुमार	२
३. अग्नि-वीणा (विवेकानन्द के पत्र)	स्वामी विवेकानन्द	३
४. श्री माँ सारदा सन्देश-सुधा		४
५. परमार्थ की ओर (१)	स्वामी यतीश्वरानन्द	५
६. जननी सारदा देवी	स्वामी गौरीश्वरानन्द	१०
७. स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान	स्वामी शशांकानन्द	१४
८. स्वामी विवेकानन्द के जीवन में विभूतियोग दर्शन	स्वामी विपाप्मानन्द	२०
९. नेतृत्व का गुण	स्वामी आत्मानन्द	२७
१०. गांधी शान्ति पुरस्कार (१९९८) प्रशस्ति-पत्र		३९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ मई—१९९९ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

☐ एक जगह मैंने दो बधिया बैल देखे। इतने में वहाँ से एक गाय जाने लगी। उसे देखते ही एक बैल मस्ती में आ गया, पर दूसरा शान्त रहा। पहले बैल का वह विचित्र भाव देख मैंने उसके बारे में खोज की तो पता चला कि वह काफी उम्र होने के बाद बधिया हुआ था जबकि दूसरे बैल को कम उम्र में ही बधिया किया गया था। वह (पहला) बैल अपने पूर्व संस्कारों को अब भी भूल नहीं सका था।

☐ जो हमेशा दूसरों के गुण-दोषों की चर्चा करते रहता है, वह अपना समय फालतू बरबाद करता है, क्योंकि परचर्चा करने से न तो आत्मचर्चा हो पाती है और न परमात्मचर्चा ही।

☐ धार्मिक अनुष्ठानों में लोगों को भोजन क्यों कराया जाता है? लोगों को खिलाना क्या एक प्रकार से भगवान् की ही सेवा नहीं है?—सब जीवों के भीतर वे अग्नि के रूप में विद्यमान हैं, अतः खिलाना यानी उन्हीं में आहुति चढ़ाना।

☐ शरीर को सुख हो या दुःख, सच्चे भक्त के भीतर से ज्ञान-विश्वास नष्ट नहीं हो पाता। उसका ज्ञान-विश्वास कभी मन्द नहीं होता। भला देखो तो, पाण्डवों को कितनी भारी विपदाएँ झेलनी पड़ीं, पर फिर भी क्षण भर के लिए भी उनके भीतर ज्ञानज्योति बुझ न पाई।

☐ साधन-भजन जितना अधिक गुप्त रूप से किया जा सके उतना ही अच्छा।

साधन-पथ

—श्री विवेक कुमार
राजेन्द्र सरोवर
छपरा (बिहार)

इस जीवन का क्या विश्वास ?
हवा में चिनगारी की तरह,
सागर में बुलबुले की तरह,
कब बुझ जाए,
कब खो जाए,
समुद्र जैसी मानवों की इस बस्ती में
दीपावली के इन असंख्य दीपों में
कब एक दीप बुझता है
यह कोई नहीं जानता,
जानने की चेष्टा भी नहीं करता,
क्योंकि सामान्यतया कोई
त्याग करना नहीं चाहता,
छोड़ सकता है
पर अपना सुख छोड़ना नहीं चाहता;
मनुष्य प्रेम कर सकता है—
मृग-छौनों से
वनस्पतियों से
मनुष्यों से,
ईश्वर से
राम से
रहीम से
कृष्ण से,
पर करता नहीं,
हृदय में
माया के
मोह के
ईर्ष्या के
घृणा के रहते
कर सकता नहीं,
ईश्वर उससे
अपने पुत्र से
प्रेम करता है
वह उसकी तरफ देखता है
उसके अपनी तरफ बढ़ने वाले
कदमों का इंतजार करता है,
बेसब्री से करता है,
जो नहीं बढ़ते
वे रावण हो जाते हैं
कंस हो जाते हैं
जो बढ़ जाते हैं
वे विवेकानन्द हो जाते हैं।

अग्नि - वीणा

(स्वामी स्वरूपानन्द को लिखित)

—गोपाल लाल विला
वाराणसी छावनी
९ फरवरी, १९०२

प्रिय स्वरूप,

……चारु के पत्र के उत्तर में उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वयं अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्मसूत्रों में बौद्ध मत का संकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिए, और शंकराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे, हाँ, बौद्ध साहित्य में भी वेदान्त का कहीं-कहीं उल्लेख है और बौद्धों का महायान मत अद्वैतवादी भी है। अमर सिंह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामों में अद्वयवादी का नाम क्यों दिया था? चारु लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् में नहीं आता है! वाह!!

बौद्ध धर्म के दोनों मतों में मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् संहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'माया' शब्द का प्रयोग है, जो प्रकृति से विकसित हुआ है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत-सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि—

(१) शिव-उपासना अनेक रूपों में बौद्ध मत से पहले स्थापित थी, और बौद्धों ने शैवों के तीर्थ-स्थानों को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होंने उन्हीं के निकट नये स्थान बनाये, जैसे कि बौद्धगया और सारनाथ में पाये जाते हैं।

(२) अग्निपुराण में गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नहीं है—जैसा कि डॉ० राजेन्द्रलाल मानते हैं—परन्तु उसका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्त्तमान एक कथा से है।

(३) बुद्धदेव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गये, इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजों की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धों ने अपनी चरण-उपासना में हिन्दुओं का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें भी यह प्रमाणित करती हैं कि वाराणसी शिव-पूजा का बड़ा स्थान था, आदि-आदि।

बोधगया से और बौद्ध साहित्य से मैंने बहुत सी नयी बातें जानी हैं। चारु से कहना कि वह स्वयं पढ़े तथा मूर्खता पूर्ण मतों से प्रभावित न हो।

मैं यहाँ वाराणसी में अच्छा हूँ और यदि मेरा इसी प्रकार स्वास्थ्य सुधरता जायगा, तो मुझे बड़ा लाभ होगा।

बौद्ध धर्म और नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित मैं जीवित न रहूँ, परन्तु उसकी कार्य-प्रणाली का संकेत मैं छोड़ जाऊँगा और तुम्हें तथा तुम्हारे भ्रातृगणों को उस पर काम करना होगा।

आशीर्वाद और प्रेमपूर्वक तुम्हारा

विवेकानन्द

श्री माँ सारदा सन्देश-सुधा

- जिसने भी सच्चे मन से ईश्वर को एक बार भी पुकारा हैं उसे कोई भय नहीं है। उन्हें निरन्तर पुकारते रहने से प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होती है। बेटा, यह प्रेम ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। वृन्दावन की गोपियों ने इसे प्राप्त किया था। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार की किसी भी वस्तु को नहीं जानती थीं।
- वह जो पानी देखते हो, जिसका स्वभाव ही नीचे की ओर जाना है, सूर्य-किरण उसे भी आकाश की ओर खींच लेती है। इसी प्रकार मन की गति भी स्वभाव से निम्नगामी है—भोग की ओर है। भगवत्कृपा से वही मन ऊर्ध्वगामी हो जाता है।
- सचमुच ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) ईश्वर ही थे। उन्होंने दूसरे के दुःखों और कष्टों को दूर करने के लिए मानव देह धारण की थी। वे वैसे ही रहे जैसे एक राजा अपने नगर में वेश बदलकर घूमता है। जैसे ही लोगों ने उन्हें पहचाना वैसे ही वे अदृश्य हो गये।
- विवेक-बुद्धि हमेशा जाग्रत रखो। यह समझने का प्रयास करते रहो कि जो सांसारिक वस्तु तुम्हारा मन आकर्षित कर रही है, वह नाशवान है और अपना ध्यान ईश्वर की ओर मोड़ दो।
- ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) मुझे संसार में ईश्वर के मातृरूप का प्रकाशन करने के लिए छोड़ गये हैं।

परमार्थ की ओर (१)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मठ, चेन्नई

आध्यात्मिक परिवर्तन :

युवा राजकुमार सिद्धार्थ अपने महल के बाग में एक वृक्ष के नीचे विचारों में खोया बैठा था। अर्ध रात्रि के अन्धकार में सारे जगत् पर निस्तब्धता और शान्ति छाई हुई थी। नर्तकियों के हंसी-मजाक और कोलाहल से ऊब कर वे भोगकक्ष को त्याग कर कुछ ही क्षण पूर्व वहाँ आये थे। एक तीव्र असन्तोष, एक गहरी रिक्तता उनके भीतर बढ़ती जा रही थी। अचानक उन्हें कुछ विचित्र वाणियाँ सुनाई दीं। उन्होंने सुना, आकाश में कुछ देवता समगान कर रहे थे :

जुड़ाना चाहता हूँ, कहाँ जुड़ाऊँ? न जाने कहाँ से आकर कहाँ बह रहा हूँ। बार-बार आता हूँ, न जाने कितना हँसता और कितना रोता हूँ। सदा मुझ यही सोच लगा रहता है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। ऐ सोने वाले, नींद से उठो, और फिर कभी मत सो जाना (रामकृष्ण वचनामृत, तृतीय खंड, नवम् संस्करण, रामकृष्ण मठ, नागपुर, १९९२, पृ. ३५३)

सिद्धार्थ उठ खड़े हुए। अपनी पत्नी और सन्तान को अन्तिम बार देखा और अपनी ऐतिहासिक यात्रा पर निकल पड़े जिसने अन्ततोगत्वा उन्हें बुद्ध, तथागत बना दिया।

आध्यात्मिक पथ का अंगीकार करने वाले एकमात्र बुद्ध ही नहीं थे। कठोपनिषद् में कहा गया है: उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्। (कठोपनिषद् १ : ३ : १४) अर्थात् उठो, जागो, और महान् आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करो। वस्तुतः अति प्राचीन काल से भगवान् महान् शास्त्रों के माध्यम से मानव को अपना बोझा स्वयं उठाकर उनके पीछे आने का आह्वान करते रहे हैं। और इस आह्वान को सुनकर प्राच्य और पाश्चात्य में हजारों लोगों ने अपना सर्वस्व त्याग कर अतिचेतन राज्य की इस यात्रा को अंगीकार किया है। सामान्य लोगों के लिये यह संसार और इसके सुख बहुत महत्व रखते हैं, लेकिन ऐसे भी लोग हैं जो नित्य और अनन्त (परमात्मा) के लिये तरसते रहते हैं। स्वामी विवेकानन्द के सत्य के लिये अथक प्रयास और संघर्ष का विचार करो। वे असाधारण रूप से पवित्र, शक्ति संपन्न, सुन्दर, बुद्धिमान और प्रतिभा सम्पन्न थे तथा यदि चाहते तो सांसारिक जीवन में किसी भी ऊँचाई तक पहुँच सकते थे। अपने परिवार की दरिद्रता और असाहयता भी उन्हें सांसारिक जीवन की ओर खींचने के प्रबल कारण थे। लेकिन इन सभी प्रलोभनों के बावजूद उन्होंने त्याग और सेवा के पथ को चुना।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी-न-कभी ऐसा समय अवश्य आता है जब वह आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति आकृष्ट होता है। इस आमंत्रण के प्राप्त होने पर वह उसे सुने बिना नहीं रह सकता। तब संसार की कोई भी वस्तु उसे सन्तुष्ट नहीं करती। उस उच्चतर आह्वान का अनुसरण किये बिना वह कभी भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता। यह आन्तरिक जागरण तथा उच्चतर आदर्श का

अनुसरण करने की अपरिहार्य प्रेरणा आध्यात्मिक जीवन की प्रारम्भ के द्योतक हैं। उसके बाद आध्यात्मिक लक्ष्य साधकको सारा जीवन आकर्षित करता तथा उसकी स्मृति में बार-बार उदित होता रहता है। सांसारिक लक्ष्यों के स्थान पर आध्यात्मिक लक्ष्य को स्वीकार करना "कनवर्शन" या ईश्वरोन्मुखता कहलाता है। इससे आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है। कुछ लोगों में यह "परिवर्तन" अचानक होता है, कुछ में उसका क्रमिक विकास होता है।

किसी भी देश में किसी भी काल में ऐसी सच्ची ईश्वरोन्मुखता कुछ लोगों में ही उपस्थित होती है। तुम चाहो या न चाहो, सच्चा आध्यात्मिक है जीवन चुने हुए कुछ अल्प लोगों के लिये ही होता है। सामूहिक आध्यात्मिकता का आदर्श भले ही बड़ा सुन्दर क्यों न प्रतीत हो, यह कभी संभव नहीं है। भगवत् गीता में कहा गया है कि हजारों लोगों में केवल कुछ लोग आध्यात्मिक जीवन-अंगीकार करते हैं, और इनमें से भी केवल कुछ ही लोग उच्चतम अतिचेतन-अनुभूति प्राप्त करते हैं। (भगवत् गीता ७ : ३)। लेकिन हममें से प्रत्येक को यह सोचना चाहिये कि हम व चुने हुए अल्पसंख्यक लोग हैं, तथा उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्ति के लिये संघर्ष करना चाहिये।

आध्यात्मिक स्पृहा दुर्लभ सौभाग्य है :

आध्यात्मिक जीवन में भी एक प्रकार का अभिजात तन्त्र या रईस साही है। महान सन्त और महर्षि, तथा सभी धर्मों के सिद्ध महापुरुषों का अपना ही एक विशिष्ट वर्ग होता है। लेकिन सांसारिक रईसों से विपरीत, ये आध्यात्मिक रईस अपनी संपदा का दूसरों में वितरण करने को सदा तत्पर रहते हैं। वे जिसका स्वयं उपभोग करते हैं, उसे दूसरों के देने में केवल प्रसन्न ही होते हैं। लेकिन खेद की बात तो यह है कि बहुत कम लोग आध्यात्मिक जीवन की महान सम्पदा के इच्छुक होते हैं। अधिकांश लोग अध्यात्म-प्रासाद की सुखकर उष्णता का आनन्द लेने के बदले संसार रूपी सूअरखाने में लोटना अधिक पसन्द करते हैं। घोड़े को पानी के निकट ले जाया जा सकता है, लेकिन यदि वह पानी पीना न चाहे तो उसे पिला नहीं सकते। अतः चारों ओर यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि कितने लोग आध्यात्मिक पथ पर चल रहे हैं। यदि तुम्हें उच्च आदर्श आकृष्ट करे, यदि उसके आह्वान का अनुभव हो, तो उसे अंगीकार करो और उसकी शर्तों को पूरी करो। यदि दूसरे उस आह्वान को अनसुना कर दें तो उसके बारे में तुम अधिक कुछ नहीं कर सकते। आध्यात्मिक जीवन में दूसरों से अलग मार्ग को स्वीकार करना अनिवार्य है।

शंकराचार्य का कथन है :

दुर्लभं त्रय मे वै ताद्वेवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

विवेकचूड़ा मणि ॥३॥

अर्थात् मनुष्यजन्म, मुक्त होने की इच्छा और महापुरुष का सश्रय, ये तीन दुर्लभ हैं तथा भगवान् की कृपासे ही प्राप्त होते हैं। लेकिन इन तीन दुर्लभ वस्तुओं की प्राप्ति भी पर्याप्त नहीं है। हमें इनके द्वारा लाभान्वित होने के लिए तत्पर होना चाहिए तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए सर्वस्व त्याग के लिए तैयार रहना चाहिए। जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी भी मूल्य को चुकाने की, तथा किसी भी कठिनाई का सामना करने की तत्परता होनी चाहिये।

यदि किसी कारण हमारा मन उच्चतर तथा चिरन्तन तत्वों की ओर आकृष्ट हो तो हमें इसे बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये तथा यह

ध्यान रखना चाहिये कि हम लक्ष्य-प्राप्ति तक बिना थके उच्चत्तर पथ पर धीर-स्थिर भाव से प्रगति करते रहें। आध्यात्मिक उत्साह बनाये रखना चाहिये लेकिन हमारे शिथिल हो जाने का खतरा सदा बना रहता है। अतः आध्यात्मिक जीवन को अंगीकार करने के कुछ समय बाद अधिकांश लोग आध्यात्मिक प्रयास बन्द कर देते हैं। मन की अत्यधिक चंचलता और बहिर्मुखता के कारण वे अधिक समय तक आध्यात्मिक उत्साह और तीव्रता बनाये नहीं रख पाते और निष्ठा-पूर्वक लगन के साथ साधन और स्वाध्याय नहीं करते। अतः हमें सावधान रहना चाहिये। आध्यात्मिक जीवन के लिये दृढ़-निष्ठा एकमात्र आवश्यक वस्तु है। निरुत्साहित हुए अथवा प्रयास में ढील दिये बिना महान लगन और अटूट दृढ़ता के द्वारा ही प्रगति संभव है। वर्डस्वर्थ अपनी एक प्रसिद्ध कविता में कहते हैं: "हमारा जन्म निद्रा और विस्मृति मात्र है।" (विलियम वर्डस्वर्थ: ओड आनद इन्टिमेशंस ऑफ इम्मोर्टेलिटी)। एक अन्य गीत में वे कहते हैं:" संसार हमसे बहुत अधिक जुड़ा हुआ है; पहले और बाद में, पाते और खोते, हम अपनी शक्ति क्षय करते हैं। (विलियम वर्डस्वर्थ, द वर्ल्ड इज टू मच विथ अस)। हमें इस तरह अपना सारा जीवन नहीं गवाना चाहिये।

संसार में चिर शान्ति सम्भव नहीं :

कई बार जब हमें कोई वस्तु प्राप्त होती है तो हम पाते हैं कि हम उसे कभी नहीं चाहते थे। हमें उसकी लालसा रही हो लेकिन उसके प्राप्त होने के समय हम वस्तुतः यह अनुभव करें कि उसकी इच्छा समाप्त हो गई है और उसका स्थान और किसी इच्छा ने ले लिया है। बहुत से लोग अपनी अभिलाषाओं के वास्तविक स्वरूप को ठीक से न समझ कर उन्हें सांसारिक दिशा में लगा देते हैं प्रदान कर देते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि मानव की कोई भी अभिलाषा/लालसा किसी भी अनित्य और परिवर्तनशील वस्तु द्वारा पूर्ण नहीं हो सकती, चाहे लोग इस विषय में स्वयं को कितना भी धोखा देने का प्रयत्न क्यों न करें। पुरानी रिक्तता पुनः-पुनः और प्रायः पहले से अधिक भयानक और निष्ठुर रूप में उनके साथ बनी रहती है उनका पीछा करती रहती है। लोग बाह्य पदार्थों में, स्त्री और पुरुषों के भौतिक रूपों में सुख खोजते हैं। लेकिन सच्चा सुख हमारे भीतर विद्यमान रहता है। वह हमारी ऐसी धरोहर है जिसे हमसे पृथक नहीं किया जा सकता। बाह्य पदार्थ कभी भी वास्तविक सुख प्रदान नहीं कर सकते, और जो थोड़ा सुख हमें मिलता है, वह अल्पसमय में नष्ट हो जाता है। हम अपने समग्र जीवन-काल पर दृष्टि रखने के बदले काल के एक अंश विशेष पर ही दृष्टि निबद्ध रखने की गलती करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि सांसारिक सम्बन्धों में, मानवी-प्रेम और मानवीय-स्नेह में अस्थायी सुख है। लेकिन अस्थायी सुख सच्चा सुख कभी नहीं हो सकता। यही नहीं, वह उसका उल्टा है। सच्चा सुख अन्तरात्मा का नैसर्गिक स्वरूप है। हमें अपने स्वरूप के जानने की, अपनी वास्तविक आत्मा को जानने की इच्छा होनी चाहिए। आत्म साक्षात्कार में ही सच्चा आनन्द निहित है।

आत्मा परमात्मा का अंश तथा उससे अभिन्न है, फिर भी भक्त अपनी आत्मा के बदले परमात्मा को अधिक महत्त्व देता है। वह एकमात्र परमात्मा को ही समस्त शान्ति और आनन्द का निधान मानता है। हमें उन्हें अपने भीतर देखने तथा उन्हें अपने हृदय में विराजित करने का प्रयत्न करना चाहिये। हमारी देह भगवान् का जीवन्त मन्दिर है। सभी शास्त्रों में इस विचार मान्यता पर बार-बार बल दिया गया है। लेकिन महान

अवतार तथा ऋषि भगवान् के सर्वश्रेष्ठ मन्दिर हैं। इसीलिए उनका प्रभाव सबसे अधिक होता है। जिन लोगो ने अपनी आत्मा में सत्य का साक्षात्कार किया है वे ही दूसरों को साक्षात्कार का मार्ग सिखा सकते हैं। परमात्मा सदा हमारे अन्तःकरण के, हमारे व्यक्तित्व के पार्श्व में विद्यमान हैं, और आन्तरिकता से प्रार्थना करने पर ही प्रार्थना सुनी जा सकती है, अन्यथा नहीं। प्रार्थना करते समय हमें कभी भी सांसारिक सुख की बात नहीं सोचनी चाहिये। सामान्यतः जिसे सुख समझा जाता है, वह आध्यात्मिक जीवन का वास्तविक मापदंड, आध्यात्मिक प्राप्ति और अनुभूति का प्रमाण कभी भी नहीं माना जा सकता। आध्यात्मिक आनन्द भिन्न प्रकार का होता है, वह "परमात्मा की शान्ति है जो बुद्धि के परे हैं।" (बाईबिल फिलिपियेन्स ४ : ७)

भगवान् से सांसारिक वस्तुओं की याचना नहीं करनी चाहिए। मान लो, वे उन्हें प्रदान कर दें। भौतिक वस्तुओं के साथ समस्याएँ भी आ सकती हैं। इस महान वरदाता के निकट जाकर व्यक्तिगत इच्छाओं और कामनाओं से सम्बन्धित सांसारिक वस्तुएँ कभी नहीं माँगनी चाहिये। हम भगवान के निकट केवल भौतिक पदार्थों के मोह से बचने तथा संसार-सागर में डूबने से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। सामान्यतः जब हम दुःखी होते हैं, तो अपनी जीवन-पद्धति को परिवर्तित कर सत्य और आनन्द स्वरूप परमात्मा की ओर जाने के बदले अपने दुःख के साथ समझौता कर लेते हैं। हम इतने देहासक्त हैं कि हम देह-सुख को अन्य सभी बातों से अधिक महत्व देते हैं, और उसको त्यागने के लिए तैयार नहीं हैं। यही नहीं, पुनः पुनः घात-प्रतिघात के बावजूद हम उसके विभिन्न रूपों को हठ पूर्वक पकड़ रहते हैं। अविद्या या माया की ऐसी महान शक्ति है।

जगन्माता या जगत्पिता (हम) बच्चों का खेल देख रहे हैं। खिलौनों और बचकाने धन्धों से जब बच्चा ऊब जाता है तभी भगवान् वस्तुतः उसके पास आकर माया के लीला क्षेत्र से उसे दूर ले जाते हैं। बच्चे मिठाइयों, गुड़ियों, खिलौने के सिपाही, घर, मोटरों, आदिसे खेलते रहते हैं, और जबतक वे इनसे ऊब कर पूर्ण वितृष्णा से इनसे मुँह नहीं मोड़ लेते तब तक भगवान् कुछ नहीं कर सकते। भगवान् को यह बहुत रोचक प्रतीत होता है। और फिर एक दिन बच्चा थोड़ा बड़ा होकर चिल्ला उठता है : मैंने सारे जीवन क्या किया? और भगवान् कहते हैं," हाँ प्रभु, तुमने सारे जीवन क्या किया है? तुम्हें ऐसा करने को किसने कहा था? इस तरह मूर्खता पूर्वक अनिश्चितकाल तक खेलते रहने को तुम्हें किसने कहा था? अपने खिलौनों में फँसने और चोट खाने के लिए किसने कहा था? यह सब किसने किया?" और तब अधिकांश लोगों में बहुत देर हो गई होती है, और बालक अपने ध्वस्त जीवन के खंडहरों में बैठकर विलाप करता रहता है।

सर्वोच्च लक्ष्य के लिए संघर्ष करो :

हम सभी को स्वस्थ और श्रेष्टतर पथ को अंगीकार करने का अवसर प्राप्त है लेकिन हम अपने विशिष्ट खिलौनों से चिपके रहते हैं और उनको छोड़ते नहीं। अतः हमें दुःख भोगना पड़ता है और हम तब तक कष्ट भोगते रहते हैं जब तक जीवन द्वारा बार-बार असंख्य उपायों से सिखाये जा रहे पाठ को सीख कर बुद्धिमानी से आचरण करने नहीं लग जाते। जिस तरह अधिकांश लोग अपनी सांसारिक कामनाओं और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, उसी तरह हमें आध्यात्मिक जीवन और साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन अधिकांश लोग ऐसा नहीं करते।

और यह पूरी तरह हमारी इच्छा पर निर्भर करता है कि हम आध्यात्मिक जीवन को स्वीकार करें या सांसारिक जीवन को, भय और पराधीनता का जीवन यापन करें या निर्भयता और स्वाधीनता का।

हमें ऐसी किसी उच्च वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए जो अपरिवर्तनशील तथा अक्षर हो। लेकिन प्रायः हम जानबूझ कर तथा स्वेच्छा से अविद्या का पथ चुनते है, क्योंकि हम अपने भौतिक तथा भावनात्मक भोगों के कल्पना राज्य से चिपके रहते हैं, जिन्हें आगे या पीछे हमें बाध्य होकर त्यागना होगा। हम सभी को एक दिन अपनी पकड़ ढीली करनी होगी और यदि यह हम स्वेच्छा से न करें तो खिलौने हमसे छीन लिए जायेंगे जो अतिकष्टकर और कुछ लोगों के लिये हृदय विदारक होगा। अधिकांश लोगों के लिए सबक सीखने का यही एकमात्र उपाय है, लेकिन यह बहुत कष्टप्रद है, और इसमें बहुत जन्म लग जाते हैं। हमें सचेतन, जानबूझ कर तथा सोद्देश्य समर्पित बुद्धि से एकनिष्ठ आध्यात्मिक जीवन यापन करना चाहिए। हमारी इस इच्छा शक्ति को जीवन को उच्च अथवा निम्न दिशाओं में, जैसा हम चाहें प्रवाहित किया जा सकता है।

लक्ष्य प्राप्ति के लिए अपने में महान् उत्साह जगाने पर ही हम उस प्रयास के लिए आवश्यक शक्ति प्राप्त कर पूरा परिश्रम कर सकते हैं। अध्यात्म-जगत् में प्रायः अव्यवस्थित मस्तिष्क वाले लोग देखे जाते हैं। वे किसी निश्चत पद्धति का अनुसरण करने की परवाह नहीं करते और अपनी भावनाओं और मनोवेगों के असीम सागर में बहते रहना चाहते हैं। अतः सचमुच देखा जाय तो वे कुछ भी हासिल नहीं करते और पूरे सांसारिक-मनोवृत्ति वाले लोगों जितना थोड़ा बहुत ही पाते हैं। अव्यवस्थित मस्तिष्क वाला कोई भी व्यक्ति संसार में सफल नहीं हो सकता। आध्यात्मिक जगत् में तो और भी कम। तुम क्या चाहते हो, यह सदा के लिए निर्धारित कर लो। प्रायः हम चाहते तो शान्ति हैं, लेकिन ऐसे पथ का अनुसरण करते हैं अन्त में जिसका परिणाम अशान्ति और कष्ट होता है। बगाल में एक कहावत है: "कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पूर्व की ओर जाना चाहते हैं लेकिन पश्चिम की ओर बढ़ने लगते हैं, और यदि कोई उनसे इसका कारण पूछता है तो कहते हैं कि मैं उत्तर की ओर जाना चाहता हूँ।"

सत्य की कसौटी :

प्रेमी अपने प्रेमास्पद की कल्पना में ऐसी बातों की कल्पना करता है जिनका अस्तित्व नहीं है। पागल आदमी भी ऐसी बातों की कल्पना करता है जो सत्य नहीं है। आध्यात्मिक जीवन में मनो-विभ्रमों, कल्पनाओं का स्थान नहीं है। हमें साधना की एक सुनियोजित विधि का अवलंबन लेकर सत्य की एक झलक प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसी झलक अचानक प्राप्त हो जाए और हम दीर्घ, नियमित साधना द्वारा उसके लिए तैयार न हों तो तीव्र प्रतिक्रिया हो सकती है और वह हमें सारे जीवन के लिए अस्थिर भी बना सकती है। अतः सर्वप्रथम तो हमें इन झलकों का अधिकारी बनना सीखना चाहिए, जिससे हम सदा के लिए उन्हें अपना बना सकें। आध्यात्मिक विकास प्रारंभ में साधक के लिए सुखप्रद नहीं बल्कि अत्यधिक कष्टप्रद होता है। मध्य-अवस्थाओं में उसका जीवन बहुत कठिन हो जाता है। तब संसार के प्रति उसकी वास्तविक रुचि नहीं रहती, और उसे आत्मसाक्षात्कार भी नहीं होता, जो उसकी पहुँच के बाहर रहता है। यह मानो बीच आकाश में लटके रहने के समान है, न वह ऊपर जा पाता है और न नीचे। (क्रमश)

जननी सारदा देवी (३)

—स्वामी गौरीश्वरानन्द
अनुवादक—अरुणदेव भट्टाचार्य

महाराज के ध्यान के प्रसंग में और एक पहले की बात की याद आती है। उन्हें अत्यन्त कष्ट झेलना पड़ा था। वृन्दावन में जब महाराज तपस्या करते थे तब हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) उनके साथ थे। हरि महाराज उन्हें भिक्षा में नहीं जाने देते थे। स्वयं जाते थे। एक दिन भिक्षा में उन्हें भुट्टे की सूखी रोटी के सिवा और कुछ नहीं मिला। न दाल; न सब्जी। वे रो पड़े थे, यह बोलते हुए—"महाराज, मैं ऐसा हतभाग्य हूँ कि आज बहुत घूमने पर भी यह केवल सूखी रोटी मिली है वह भी भुट्टा की।" महाराज को परवाह नहीं थी। वे उसे परमानन्द से पानी में भिगोकर खाये जा रहे हैं। एक दिन महाराज हरि भाई से कहते हैं कि "तुम जो भिक्षा करके लाओगे उसका अपना अंश खा लेना और मेरा ढककर रख देना।" उस समय महाराज एक साथ पाँच-छः अथवा आठ घंटे ध्यानमग्न रहते थे। वे जब ध्यान से उठते थे तो देखते थे कि रोटी एकदम सूख गयी है। तब पानी में भिगोकर खाते थे। इसको देखकर हरि महाराज को रुलाई आती थी। वे सोचते थे कि "जिस महाराज को ठाकुर अच्छी-अच्छी चीजें खिलाते थे उनको वे क्या खिला रहे हैं। ऐसे महाराज भी जो दीक्षा प्रार्थी विषवत् होता था उन सबको माँ के पास भेज देते थे। महाराज से दीक्षा प्रार्थना करते ही वे कभी-कभी बोलते थे, "देखो, तुम कल से हर रोज सबेरे शाम एक हजार बार ठाकुर का नाम जप करोगे। एकदम यदि एक महीना हर रोज सबेरे शाम दोनों समय जप कर सको तब ही मेरे पास आने से मैं दीक्षा दूँगा। यह जप बिना किसी व्यतिक्रम से करना होगा। बाधा पड़ने पर फिर से शुरू करना होगा। एक के ऐसा करने पर भी महाराज उनसे बोले थे, "तुम तो कह रहे हो, जप किया है। आज नहीं किया। जाओ एक महीना और जप करो। ठाकुर का नाम जितना लोगे उतना ही कल्याण होगा। किसी ने महाराज से पूछा था, "माँ के पास जाने से माँ दीक्षा दे देती हैं और आप क्यों इतना घुमा-फिराकर देते हैं?" महाराज तब बोलते थे, "अरे। माँ की शक्ति और मेरी शक्ति क्या समान है? माँ की शक्ति अनन्त शक्ति है। माँ विष हजम कर सकती हैं। हम तो परख कर ठाकुर के आदेश पाने पर ही दीक्षा देते हैं।" एक दिन माँ, मेरे सामने बोली थीं, "बेटे! सब माँ के लिए अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेजते हैं देखो राखाल ने मेरे पास दीक्षा देने के लिए क्या भेजा है।" जिसको महाराज भेजे थे वह बिलकुल बेकार था। कभी-कभी माँ को यह कहते हुए सुना था, "तुम्हारा शरीर पापमय है, यह शिवक्षेत्र है—यहाँ तुम तीन रात रहो, तुम्हारी देह शुद्ध होने पर तब तुमको दीक्षा दूँगी।" यह बात एक को बोली थीं। जो लोग समझते हैं कि यह सबके लिए है, वे ठीक नहीं हैं। अब लोग तीन रात काटना है जयरामवाटी में सोचकर आते हैं और हमारी परेशानी बढ़ जाती है। अब बसें चलती हैं उससे अत्यधिक लोग आते हैं। इस प्रकार माँ का स्नेह देखिए, कहती हैं "राखाल ने देखो किस तरह

का आदमी भेजा है।" मतलब, एकदम बेकार। आप जानते हैं माँ कभी-कभी ठाकुर की तरह बोलती थीं, कुछ आते हैं जो चरण स्पर्श करने पर ही शरीर शीतल हो जाता है और कुछ ऐसे भी आते हैं जिनके स्पर्श करने पर ही जलन की अनुभूति होती है। दो तीन बार पैर धोने पर तब जलन कम होती है।" हम तब कहते थे कि "किसी को भी आपका चरण स्पर्श अब करने नहीं देंगे।" उसपर माँ क्या उत्तर देती थीं आप जानते हैं—"उसके लिए ही तो हमारा आना है।" अर्थात इन पापीजनों का ही पाप ग्रहण करने के लिए और उद्धार करने के लिए उनका आना हुआ था। कहती थीं, "ठाकुर क्या केवल रसगुल्ला खाने के लिए आये थे। इन सबों का उद्धार करने के लिए ही हम आये हैं। 'नहीं तो वे आये क्यों? नित्यधाम में आनन्द से रहते। आये हैं इसके लिए ही।" ऐसी थी उनकी करुणा।

यह बात उस समय की है जब महापुरुष महाराज प्रबन्धक थे। नियम-पालन के प्रति उनकी कठोर दृष्टि थी। छोटी मोटी त्रुटि पर भी कठोर दंड देते थे। एक ब्रह्मचारी से कुछ नियम विरुद्ध काम हो गया था एक दिन। उस समय हम सब गंगा में स्नान करते थे और गंगाजल पीते भी थे कारण पीने के पानी का दूसरा कोई साधन बेलुड़ मठ में उपलब्ध नहीं था। दशमी के दिन जब गंगाजल थोड़ा साफ रहता था हम सब उस दिन बड़े-बड़े मटके गंगाजी से भर लेते थे। उसके ऊपर कपड़ा बाँधकर एक फिटकिरी इस तरह से ऊपर रखी जाती थी कि पानी में डूबी रहे। वह फिटकिरी पानी में घुल जाती थी। मिट्टी सब मटका के नीचे जम जाती थी और उसके ऊपर का पानी साफ सा हो जाता था। वही पानी हम पीते थे। गंगाजल गँदला होने के कारण हम में से बहुत लोग केवल गमछा पहने गगास्नान करने जाते थे। स्नान करके लौटकर कपडा पहनकर गमछा एक कुएं के पानी से साफ कर लेते थे। वह पानी पीने लायक नहीं था। वह ब्रह्मचारी उस दिन गमछा पहनकर ही स्नान करने गया था। उससे किसी ने कहा था, "जाओ, प्रबन्धक महाराज के पास, आज तुम्हारे भाग्य में दो पैसा है।" दो पैसा का मतलब था दो पैसा देकर दंड देना कि वह उससे गंगापार करके घर चला जाय क्योंकि बेलुड़ मठ में रहने की योग्यता उसमें नहीं है। महापुरुष महाराज को ऐसी सजा से हम डरते थे। यहाँ तक कि मैगनोलिया ग्रोडिफ्लोरा काटते समय डाली कट जाय अथवा छाल उतर जाय तब भी इस तरह का दंड होने का डर रहता था। अवश्य यह भी है कि महाराज पैसा देने को बोलते समय चुपके से यह भी बोल देते थे कि चार पैसा देना। यदि वह वापस आना चाहे तब उसे पैसा कहाँ से मिलेगा? ब्रह्मचारी यह सुनकर कि उसके भाग्य में आज दो पैसा है, बेलुड़ मठ से गमछा पहने ही भाग निकले। कहाँ जाना है ठीक नहीं था—बहुत सोचकर माँ के पास जयरामबाटी जाने का निश्चय किया। अब भी बहुत सारे लोग जयरामबाटी का रास्ता नहीं जानते हैं, उस समय उनको कैसे पता होगा? बहुत घूमफिर कर दो दिन भूखे वे आरामबाग पहुँचे थे। उस आरामबाग श्मशान में एक साधु रहते थे जिन्होंने माँ का दर्शन किया था। वे रामकृष्ण मिशन के साधु नहीं थे। साधु ने ब्रह्मचारी से कहा था, "भाई मेरे! यहाँ से जयरामवाटी तेरह मील दूर है। सन्ध्या हो गयी है, वहाँ पहुँचते रात हो जायेगी। तुम यहीं ठहर जाओ। आटा और आलू भिक्षा करके लाया हूँ रोटी बनाता हूँ—खाओ। विश्राम करो। कल सबेरे उठकर चले जाना।'; पुनः बोले थे, "माँ के पास जाओगे गमछा पहनकर?" और ब्रह्मचारी को पहनने के लिए

कपड़ा दिये थे। जिस दिन ब्रह्मचारी जयरामबाटी पहुँचा था, मैं और मेरे प्रधान शिक्षक महोदय दोनों वहाँ पर थे। शिक्षक महोदय हुक्का पीते थे परन्तु माँ से छिपाकर। मुझको उनके लिए आग लानी पड़ती थी छिपकर-चुपके से। वे मुझको मामी की अंगीठी से लाने को कहते थे जिससे माँ को पता न लगे। मैं हुक्का तैयार करने के लिए जा रहा था, देखा कि दरवाजे पर एक साधु खड़े हैं। हुक्का रखकर प्रणाम करके मैंने पूछा था, "आप कहाँ से आ रहे हैं?" "बेलुड़ मठ से"—उत्तर सुनकर मैंने उनसे कहा था, "आप बेलुड़ मठ से आये हैं तब यहाँ पर क्यों खड़े हैं? जाइये भीतर माँ के पास।" उन्होंने मुझको माँ की अनुमति लाने के लिए कहा था। मैंने जवाब दिया था, "मैं जानता हूँ कि बेलुड़ मठ के साधु के लिए अनुमति आवश्यक नहीं है। मैं यहाँ का पंडा हूँ, मैं आपको ले जाता हूँ।" उन्होंने पुनः अनुमति के बिना जाने से इनकार किया था। मैंने उसके बाद माँ से जाकर कहा था, "माँ बेलुड़ मठ से साधु एक आये हैं। आपके दर्शन के लिए अनुमति माँग रहे हैं।" माँ हँसते हुए बोलीं, "बेलुड़ मठ से सन्तान आयी है उसमें अनुमति क्या?" जब मैंने कहा था कि वे आ नहीं रहे हैं, माँ ने उनको आने की अनुमति दी थी। मैंने उनको जाकर यह सूचना दी थी। फिर भी मेरे मन में खटका लगा था क्योंकि बेलुड़ मठ के साधु कभी किसी से पूछते तक नहीं, सीधे माँ के पास पहुँच जाते हैं, अब इन्होंने क्यों वैसा किया। बात क्या है देखने के लिए मैंभी माँ के पास गया था। वहाँ मैंने देखा कि साधु माँ को दंडवत् प्रणाम किये हैं और सिसककर रोते-रोते बोल रहे हैं कि महापुरुष महाराज काम की त्रुटि होने के कारण उनको मठ से निकाल देंगे इस डर से माँ के चरणों में आये हैं। माँ तब उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हुई बोली थीं, "बेटा! डरो नहीं। मैं तारक को लिख देती हूँ। चिन्ता मत करो।" मुझसे माँ बोलीं, "अहा! बेटा मेरा कितना कष्ट करके पैदल आया है।" और एक बात बोली थीं, "काशी, वृन्दावन जाना आसान है, मेरे पास आना कठिन काम है।" तब हमने समझा था कि पथ की कठिनाई की बात बोल रही हैं, अब समझ में आता है 'मेरे पास आना' का मतलब दूसरा कुछ ही है। जिनके भाग्य में लिखा होगा उनको ही यह सौभाग्य प्राप्त होगा। माँ ने उनको पूछ ही लिया था कि 'कपड़े इतने गन्दे क्यों है? हम रामकृष्ण मिशन के साधु सब साफ सुथरे पहनते हैं और उनकी राख मलिन फटे कपड़े देखकर मुझको पहले ही सन्देह था कि वे रामकृष्ण मिशन के नहीं हैं। पता लगा कि वह कपड़ा उस साधु का दिया हुआ था। माँ ने पूछा था, 'तुम ब्रह्मचारी हो अथवा संन्यासी?" जिसके जबाव में वे बोले थे, "मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेरा नाम है अक्षर चैतन्य।" माँ तब बोलीं, "कोई डरने की बात नहीं है: मैं तारक (स्वामी शिवानन्द) को चिट्ठी लिख देती हूँ। मेरे बेटे, डरने की कोई बात नहीं है। तुम यहीं कुछ दिन रह जाओ कितने कष्ट करके पैदल यहाँ आये हो। शिक्षक महाशय यह कहकर चले गये—" राममय को छोड़ जाता हूँ। साधु जब वापस जायेंगे उनको पैदल नहीं जाना पड़ेगा। मेरे घर लाने पर ही मैं रुपये दे दूँगा। राममय जाकर उनको गाड़ी में बैठाकर आयेगा। पैदल जाना नहीं पड़ेगा।" माँ मुझसे बोली थीं, "बक्से से अपने जैसी लाल किनारे वाली दो धोतियाँ और एक चद्दर निकाल कर दे दो।" तब उन्होंने कपड़े पहने थे। मैं, माँ के गणेश का काम करता था। उनकी सारी चिट्ठियाँ लिखता था। मेरा लेखन काफी सुन्दर था। मेरी लिखावट आप देख सकते हैं बेलुड़ मठ में।

दुर्गापूजा मेरी लिखी गई पुस्तिका देखकर की जाती है। मैंने उसको डढ़ महीने तक एक-एक अक्षर करके लिखा था। जिस दिन समाप्त हुई थी मैंने उसको अध्यक्ष शिवानन्दजी को दिया था। महापुरुष महाराज उसको खोलकर ही बोले थे, "हाथ का लिखा छपे अक्षर जैसा लगता है—दो राममय के दोनों हाथ भरकर प्रसाद।" सेवक शंकर महाराज (स्वामी अपूर्वानन्दजी) मुझसे बोले थे, "महाशय, दोनों हाथ एकसाथ करिए महाराज के आदेशानुसार आपको हाथ भरकर सन्देश देना होगा।" तब वे दिये भी थे। इस प्रकार मुझको बहुत सारे पत्र लिखने पड़ते थे।

माँ बोलती गयीं, मैं लिखता गया—"कल्याणवरेषु बाबाजीवन तारक—छोटा राजेन से कुछ त्रुटि हो गयी है। तुम उसको मठ से निकाल दोगे इस डर से बेटा बहुत कष्ट सहकर पैदल चलकर मेरे पास आया है। मैं उसे तुम्हारे पास भेज रही हूँ—माँ के पास बेटे का अपराध होता है क्या? तुम उसको कुछ मत बोलना। आशीर्वादादि लेना। इति माँ।" पत्र चला गया। उस समय पत्र एक दिन में ही पहुँच जाता था। उत्तर भी आ गया। महापुरुष महाराज ने लिखा था, "माँ! हम ढूँढ़ रहे थे कि वह लड़का गया कहाँ! आपके पास पहुँच गया है जानकर निश्चिन्त हुआ। आप कृपा करके उस लड़के को मेरे पास भेज दें। मैं उसको कुछ नहीं कहूँगा। प्रणाम ग्रहण करने की कृपा करें। इति तारक। आदि।" जब चिट्ठी का उत्तर भी आ गया तब उनको लेकर मैं प्रधान शिक्षक महोदय के पास पहुँचा। वे तो उनको पहले ही देख चुके थे। उनके लिए उन्होंने दो कमीज तैयार करके रख दी थी और दो कपड़े खरीद करके रख दिये थे। उनको परितोषपूर्वक खाना खिलाके मुझको उनके टिकट के लिए रुपये दिये थे। उनको गाड़ी पर बैठाकर आने के लिए। एक पोस्टकार्ड पर अपना नाम और पता लिखकर मैंने उनको दिया था यह लिखने के लिए कि महापुरुष महाराज ने उनसे मिलने पर कैसा व्यवहार किया है। उन्होंने लिखा भी था, "मन्दिरों में प्रणाम करने के बाद जैसे ही मैंने महापुरुष महाराजजी के कमरे में प्रवेश किया उन्होंने खाट से उतरकर मुझको छाती से लगा लिया। फिर बोले, "बेटा! तुम मेरे विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील करने गये थे! इस तरह से मुझ पर स्नेह व्यक्त किया है। इस घटना से स्पष्ट है कि ठाकुर की सन्तानें माँ को कितना सम्मान देती थीं; कितने उच्चासन पर बैठाती थीं।

(अगले अंक में समाप्य)

साहसी होओ! मेरे बच्चों को सब से पहले साहसी होना चाहिए। किसी भी दशा में सत्य के साथ थोड़ासा भी समझौता न करो। उच्चतम सत्यों का प्रचार करो—उन्हें दुनिया भर में बिखेर दो। मान खो बैठने अथवा अप्रिय संघर्ष उत्पन्न हो जाने का भय मत करो। यह निश्चित जान लो कि यदि तुम नाना प्रकार के प्रलोभनों के बावजूद सत्य से लगे रह सको, तो तुममें ऐसी दैवी शक्ति आ जाएगी, जिसके समक्ष लोग तुमसे वे बातें कहते डरेंगे, जिन्हें तुम सत्य नहीं समझते। यदि तुम लगातार चौदह वर्ष तक अखण्ड रूप से कठोरता के साथ सत्य का पालन कर सको, तो तुम जो कुछ कहोगे, लोग उसी पर पक्का विश्वास कर लेंगे।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द और महावीर हनुमान–3

—स्वामी शशांकानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, रांची

(गतांक से आगे)

"हाँ मैंने ईश्वर को देखा है जैसे तुझको देखता हूँ। नहीं ! इससे भी अधिक स्पष्ट देखता हूँ। मैं उनसे बातें भी करता हूँ और यदि तू चाहे तो तुझे दिखा सकता हूँ" श्रीरामकृष्ण के इस उत्तर ने नरेन्द्र नाथ के हृदय में उठते हुए तूफान को शान्त कर दिया और वह उनके चरणो में अपने को समर्पित कर बैठा। उसे विश्वास हुआ कि श्रीरामकृष्ण देव जगद्गुरु हैं, विश्वगुरु हैं, युग गुरु हैं जो इस पृथ्वी पर संशययुक्त पथभ्रष्ट मानव जाति को सत्य मार्ग दिखाने आए हैं।

फिर नरेन्द्र के मन में एक के बाद एक परिवर्तन आने लगे। उनकी दृष्टि और भी खुलने लगी।

पिता की मृत्यु के पश्चात् से ही जो दुःख और कष्ट के काले बादल नरेन्द्र के जीवन में आए थे वे उसके जीवन को अन्धकारमय बना रहे थे पर वह उस अन्धकार में भी संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ रहा था। घर में विधवा माँ, भाई और बहनें केवल उसी पर निर्भर करती थीं और वह उनके लिए कुछ आय कर उनका पेट भरने में असमर्थ था। नौकरी के लिए दर-दर भटकता रहा। अन्त में एक दिन माँ ने विवश होकर नरेन्द्र से कह ही दिया, "तेरे गुरु तो सिद्ध पुरुष हैं : जा न उनसे कहकर कुछ व्यवस्था कर। नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचा और अपनी माँ की बात उनसे कह दी और अनुरोध किया था कि वे माँ काली से प्रार्थना कर उसकी व्यवस्था करें।

श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से कहा; जा आज मंगलवार है, माँ का दिन है, तू स्वयं ही जाकर माँ से कह, वे तेरी प्रार्थना सुनेंगी।

नरेन्द्र तो मूर्ति नहीं मानता था। वह कैसे भवतारिणी के मन्दिर में प्रतिष्ठित माँ काली से प्रार्थना करे। पर श्रीरामकृष्ण देव के पुनः पुनः अनुरोध करने पर वह मन्दिर में गया। श्रीरामकृष्ण ने कहा था, "जाकर माँ से कहना, माँ मुझे रोटी दो, कपड़ा दो, धन दो, दौलत दो।" नरेन्द्र माँ भवतारिणी के सामने जैसे ही पहुँचा तो मृण्मयी माँ का चिन्मय रूप देखा।

बस वह सब कुछ भूल गया। दर्शन कर कृतार्थ हुआ और कहने लगा, "माँ ! भवतारिणी मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, और विवेक दो।"

श्रीरामकृष्ण देव के पास लौटने पर उन्होंने फिर भेजा। इस बार भी वैसा ही हुआ। फिर तीसरी बार भी वैसा ही हुआ। तो श्रीरामकृष्ण देव ने आशीर्वाद दिया कि उनकी कृपा से मोटा कपड़ा और मोटा भात मिलता रहेगा।

इस घटना से श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को यह संकेत किया कि उसका जीवन एक विशेष कार्य के लिए हुआ है। श्रीरामकृष्ण देव ईश्वरावतार हैं और उसमें उसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और विवेक सम्पन्न होकर उनकी सहायता करनी है। श्रीरामकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं जो भक्तों के हित के लिए उनके भव-बन्धन तोड़ने हेतु, दुष्टप्रकृति का नाश कर सज्जनों के परित्राण के लिए इस पृथ्वी पर बार-बार जन्म लेते हैं। मनुष्य शरीर धारण कर दिव्य लीला करते हैं जिस दिव्य नर-लीला का स्मरण कर और उनके नाम का कीर्तन कर भविष्य में असंख्य नर-नारी भवसागर से तर जाएंगे।

यह बात समझ कर नरेन्द्र नाथ उनकी सेवा करते हुए यह प्रयत्न करते रहे कि इस अवतार पुरुष को अधिक समय तक इस धराधाम पर रखा जाए। उनका अटूट विश्वास होते हुए भी एक दिन उनके मन में अन्तिम सदेह हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे। "यदि श्रीरामकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं तो भयंकर रोग से आक्रान्त होकर इतना कष्ट क्यों पा रहे हैं? दुर्बल और कृशकाय शरीर अब अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। ये पूर्णब्रह्म परमात्मा कैसे हो सकते हैं? साधारण मनुष्य की भाँति रोगाक्रान्त श्रीरामकृष्ण यदि इतने कष्ट में भी यह कह द कि वे भगवान हैं तो मैं मानूँगा।" नरेन्द्र ऐसा सोच ही रहे थे कि श्रीरामकृष्ण ने उनकी ओर देखते हुए कहा, "क्या तुझे अभी भी सन्देह है? जो राम, वही कृष्ण वही अब रामकृष्ण। तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।"

बस श्रीरामकृष्ण की यह वाणी सुनकर नरेन्द्र नाथ उनके चरणों में गिर गया। दोनों चरणों को पकड़कर विह्वल होकर, अश्रुधारा से उन चरणों को धोने लगा।"

ऐसा लगा मानो त्रेता के हनुमान जी एक बार फिर कलियुग में अपने इष्ट श्रीराम के चरणों में लोट पड़े।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।

यही श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र के परस्पर परिचिति की पूर्णता थी। श्रीराम और हनुमान जी का परिचय एक दिन में हुआ और श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी का तीन परिचय हो जाने पर।

दोनों ही भगवान के प्रिय हैं

दोनों ही भगवान के प्रिय हैं क्योंकि दोनों में वह प्रभु का समदरसी भाव था जो प्रभु को भाता है। वह भाव है सर्वभूतों में ईश्वर दृष्टि।

रामजी हनुमान जी से कहते हैं कि

समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

हे हनुमान! मुझे सब कोई समदरसी कहते हैं इसलिए मुझे ऐसा सेवक प्रिय है जो अनन्य मतिवाला हो। अर्थात् जिसकी मति में यह दृढ़ विश्वास हो कि चराचर जगत भगवान श्रीराम हैं—यानि सर्वत्र हैं और मैं उनका सेवक हूँ।"

श्रीरामकृष्ण देव भी नरेन्द्र नाथ को इसलिए अत्यन्त स्नेह करते थे कि वे भगवान श्रीरामकृष्ण के भाव को ग्रहण करने में समर्थ थे।

एक दिन श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में आए हुए कुछ वैष्णव भक्तों से कह रहे थे, 'वैष्णव धर्म में तीन मुख्य बातें हैं जीव पर दया, नाम में रुचि और साधु संग।" जैसे ही उन्होंने कहा जीव पर दया, "वे समाधिस्थ हो गए और फिर समाधि से उतरते हुए उन्होंने कहा, छि: छि यह कैसी बात, "जीव पर दया करने वाला तू कौन ? कह शिव ज्ञान से जीव की सेवा।"

नरेन्द्र नाथ श्रीरामकृष्ण की उपर्युक्त वाणी से इतने प्रभावित हुए कि बाहर निकलकर उन्होंने अपने मित्रों से कहा, "आज मैंने श्रीरामकृष्ण देव से जो बात सुनी है, बहुत अपूर्व बात है। यदि सुअवसर मिला तो सारे संसार में इस भाव का प्रचार कर दूँगा।"

और हुआ भी ऐसा। भारत के अन्तिम छोर कन्याकुमारी की सुप्रसिद्ध चट्टान पर बैठकर ध्यानस्थ विवेकानन्द ने कहा था, 'आज तक तुमने सुना है 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव।' मैं इसमें संयुक्त करता हूँ 'दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव, रोगी देवो भव।"

बाद में उन्होंने एक कविता में लिखा है (अनुवादित) "बहुरूप में तब सन्मुख तज कहाँ खोजते हो ईश्वर। जीवों से जो करे प्रेम उनकी सेवा लेते ईश्वर।"

अर्थात् सर्वभूतों में प्रभु विराजमान हैं। हम तो केवल उनके सेवक मात्र हैं। अर्थात् सब जीवों में शिव सेवा का भाव ही सर्वोपरि मुक्ति देने वाला है।

इसलिए श्री रामकृष्ण का नरेन्द्र के प्रति जो स्नेह था वह और किसी के प्रति नहीं था। उन्हें यह कहते बहुत बार सुना गया है; "वह बहुत दिनों से यहाँ नहीं आया है, उसे देखने की बहुत इच्छा होती है, एक बार यहाँ आने के लिए कह देना।"

"देखो नरेन्द्र के लिए मेरा हृदय मानो अंगौछा निचोड़ने की तरह मरोड़ रहा है। उसे एक बार भेंट करने के लिए कहना।"

"नरेन्द्र शुद्ध सत्त्वगुणी है। मैंने देखा है कि वह अखण्ड के घर के चार में से एक है तथा सप्तऋषियों में से एक है। उसके गुणों की सीमा नहीं है।"

इतना कहते कहते एक दम अधीर होकर पुत्रविरह में विलाप करती हुई माँ की तरह व्याकुल होकर रोने लगे। अपने को संभाल न सके, निरन्तर रोते रहे। जब सब चले गए तो उन्हें यह कहते हुए सुना, "माँ उसे देखे बिना मैं रह नहीं सकता।"

अब यह स्पष्ट है कि श्री हनुमान जी महाराज जितने भगवान श्री राम को प्रिय थे, स्वामी विवेकानन्द जी भी श्रीरामकृष्ण देव को उतने ही प्रिय थे।

केवल इतना ही नहीं दोनों भगवदावतार भगवान के कार्य में सहायता करने के लिए कटिबद्ध थे। अपने कार्य के लिए भगवान ने उन्हें रखा था।

प्रभु कार्य के लिए चिह्नित

परब्रह्म परमात्मा अपनी दिव्यलीला चरितार्थ करने के लिए अपने कार्य में सहकारिता करने के लिए अपने चयन किए हुए पार्षदों को ले आते हैं।

जैसा कि मैं पहले कहा था कि भगवान शंकर ही श्रीरामावतार में उनके सेवक के रूप में पवनपुत्र हनुमानजी बन कर आए थे और वे ही श्रीरामकृष्णावतार में उनके परम शिष्य स्वामी विवेकानन्द के रूप में अवतरित हुए थे।

दोनों रूपों में ही वे भगवान के लीला कार्य के लिए चुने गए थे।

हनुमान जी महाराज से प्रथम भेंट होने पर उन्होंने बालि और सुग्रीव के बैर की बात श्रीराम को बतायी और वादा किया कि यदि वे बालि को मारकर सुग्रीव को राजा बना दें तो सुग्रीव अपनी वानर सेना के साथ माता जानकी की खोज में सहायता करेंगे। भगवान श्रीराम ने हनुमान जी का प्रस्ताव स्वीकार किया और बालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया।

अब सुग्रीव ने जब माता जानकी की खोज के लिए अपनी वानर सेना को आदेश दिया कि वे इस कार्य के लिए प्रस्थान करें। तब अंगद, नल, नील, जाम्बवान, हनुमान आदि सभी अन्य वानर सेना सहित वहाँ आ पहुँचे जहाँ श्रीराम उपस्थित थे। राजा सुग्रीव ने उन्हे दक्षिण दिशा में जाने का आदेश दिया क्योंकि सीता हरण करते हुए रावण के विमान को उन्होंने दक्षिण दिशा में जाते हुए देखा था।

सब बानर सेना एक-एक करके आगे आयी ओर भगवान श्री राम को प्रणाम कर प्रस्थान के लिए तैयार हुई।

किन्तु बजरंग बली हनुमान एक विनयी सेवक थे। सबसे पीछे आए और जब वे प्रणाम करने के लिए आगे बढ़े तो गोस्वामी जी कहते हैं।

पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥

जब सबसे पीछे हनुमान जी महाराज प्रणाम करने आए तो यह जानते हुए कि कार्य तो हनुमान जी को ही करना है। भगवान श्री राम ने उन्हें अपने पास बुलाया।

परसा सीस सरोरूह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी॥

बहुप्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरग बेगि तुम्ह आएहु॥

बड़े स्नेह से हनुमान जी के सिर को अपने कर कमलों से स्पर्श करते हुए भगवान श्रीराम ने, यह जानते हुए कि यह कार्य हनुमान ही करेंगे, अपने हाथ की मुद्रिका उन्हें देते हुए कहा कि यह मुद्रिका सीता जी को देना जिससे वे तुम्हें पहचान लेंगी कि तुम हमारे भेजे हुए हो और हम उन्हें मुक्त कराने में सचेष्ट हैं। उन्होंने हनुमान जी से यह भी कहा कि सीता जी को बहुत प्रकार से यह विश्वास दिलाना कि हममें उन्हें मुक्त कराने का बल है। यह समझाकर तुम तुरंत लौट आना।

जिस प्रकार से श्रीराम को यह पूरा विश्वास था कि पवनपुत्र हनुमान ही उनके कार्य में सफल होंगे। उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण देव को भी यही पूर्ण विश्वास था कि स्वामी विवेकानन्द ही

उनके कार्य को सम्पन्न करेंगे। इसलिए एक दिन बड़े स्नेह से उन्हें अपने निकट बुलाकर पास में बिठाया और उन्हें अपनी संचित विभूतियाँ देनी चाही। परन्तु नरेन्द्रनाथ ने उन्हें यह कहकर नहीं लेना चाहा कि उनसे ईश्वर लाभ न होगा।

श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्र नाथ को विभूतियाँ प्रदान करते हुए कहा था :—

"ईश्वर लाभ के विषय में सहायता न होने पर भी जब ईश्वर लाभ करके तू उनका कार्य करने लगेगा, तब उनसे विशेष सहायता ले सकेगा।"

स्वामी विवेकानन्द अपने शिष्यों से बाद में कहते हैं :—

"बेटा, एक महान कार्य को सम्पन्न करने का भार मेरे कन्धे पर दिया गया है, परन्तु मेरी शक्ति क्षुद्र है, मेरे द्वारा उसका सम्भव होना प्रतीत नहीं होता, इसी से मैं हताश होता जा रहा हूँ। जितने ही दिन बीतते जाते हैं, उतना ही मानो अधिक स्पष्ट रूप से समझ रहा हूँ कि सनातन धर्म के लुप्त गौरव का फिर से उद्धार करना ही उनका (श्रीरामकृष्ण का) अभिप्रेत कार्य है।"

किन्तु श्रीरामकृष्ण तो जानते थे कि नरेन्द्र में वह योग्यता है इसलिए उन्होंने सब शिष्यों को पास बुलाकर नरेन से कहा था, "नरेन ! मेरे ये सब लड़के रहे, तू सबसे बुद्धिमान और शक्तिमान है उनकी रक्षा करना और उन्हें सत्पथ पर चलाना। सब सिद्धियाँ उन्हें देकर उन्होंने कहा था बेटा आज तुझे सब कुछ देकर मैं फकीर हो गया।"

हनुमानजी और स्वामीजी दोनों ही निष्काम कर्मयोगी थे :

श्रीरामकृष्ण कहते हैं "जो कर्म अपने आप सामने उपस्थित हो जाये और जिसे नहीं करने से नहीं चलेगा, उसे निष्काम भाव से (अनासक्ति से) करना चाहिए। जानबूझ कर काम बढ़ाना ठीक नहीं है, उसमें ईश्वर विस्मरण होता है।" ऐसा निष्काम काम मोक्ष प्राप्ति कराता है।

जब भगवान श्री राम से परिचय हो गया तब हनुमानजी ने यह नहीं कहा कि मैं सीता जी की खोज करूँगा। उन्होंने कहा था :

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥

किन्तु जब श्री राम ने अपने हाथ से हनुमान जी का शीष स्पर्श करते हुए मुद्रिका दी।

परसा शीष सरोरूह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥

तब अपने को श्री राम का यन्त्र मानकर हनुमान जी महाराज ने अपने को धन्य माना।

हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना ॥

अपने हृदय में कृपा निधान का स्मरण करके उनका कार्य करने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने अपनी योग्यता पर अहंकार नहीं किया इसमें करुणा निधान श्री राम की कृपा का अनुमान किया।

स्वामी जी के जीवन में भी देखा जाता है कि जब श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा तुझे क्या चाहिए तो उन्होंने निर्विकल्प समाधि माँगी थी। श्रीरामकृष्ण का कार्य करना है ऐसा कुछ भी नहीं कहा। किन्तु जब श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा माँ मुझे अपने काम के लिए संसार में खींच लाई है, तुझे मेरा अनुसरण करना ही होगा तू जाएगा कहाँ ?

जब श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को इस इच्छा को तुच्छ बताते हुए कहा, "छी: छी: यह कैसा स्वार्थ मैं तो तुझे एक इतना बड़ा वृक्ष देखना चाहता हूँ कि जिसकी छाया में कोटि-कोटि मानव शांति पाएँगे।"

तब उन्होंने अपने को धन्य माना और भगवान श्रीरामकृष्ण के यन्त्र रूप से कार्य करने में अपना सौभाग्य समझा।

बाद में स्वामीजी निष्काम कर्मयोग की पराकाष्ठा पर पहुँच कर पत्र में लिखते हैं :

"माँ ही अपना काम करा रही है, मैं अब अधिक चिन्ता नहीं करता। प्रतिक्षण मेरे समान सहस्रों पतंगे मरते हैं। उनका काम उसी प्रकार चलता रहता है। माँ की जय हो··· माँ की इच्छा के प्रवाह में निःसंग भाव से बहना, यही मेरा सम्पूर्ण जीवन रहा है। जिस समय मैंने इसमें बाधा डालने का प्रयत्न किया है, उसी समय मैंने कष्ट पाया है। उनकी इच्छा पूर्ण हो।···

विवेक शिखा की 'संरक्षक'-योजना

विवेक शिखा के प्रकाशन की सुविधा को ध्यान में रखकर 'विवेक शिखा' के 'स्थायी कोष' की एक योजना बनायी गयी है। जो कोई कम से कम १०००/- (एक हजार) रुपये या इससे अधिक रुपये विवेक शिखा के 'स्थायी कोष' के लिए दान देंगे वे इसके संरक्षक होंगे। 'विवेक शिखा' में उनका नाम प्रकाशित होगा और वे यावज्जीवन विवेक शिखा निःशुल्क प्राप्त करते रहेंगे। विवेक शिखा के जो आजीवन सदस्य हैं वे शेष रकम देकर इस पत्रिका के संरक्षक हो सकते हैं। यह योजना केवल भारत के दाताओं के लिए लागू है।

—व्यवस्थापक

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,९९०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-

स्वामी विवेकानन्द के जीवन में विभूतियोग दर्शन

—स्वामी विपाप्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक बार भगवान श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को, (जो आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुए) दक्षिणेश्वर की निर्जन पंचवटी में बुलवाया और कहा—"तपस्या के प्रभाव से मुझमें दिव्य अलौकिक सिद्धियाँ बहुत पहले से ही प्रकट हो चुकी हैं।" नरेन्द्रनाथ की परीक्षा लेने के उद्देश्य से कहिये या उन्हें अपनी योग-विभूतियों को अर्पित करने के उद्देश्य से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव बोले—"पर मुझ जैसा व्यक्ति, जिसे पहनी हुई धोती को सँभालना भी कठिन काम लगता है, उन विभूतियों का ठीक-ठीक उपयोग भला किस प्रकार कर सकेगा? इसीलिए मैं सोच रहा हूँ कि जगन्माता को बताकर वे सब सिद्धियाँ तेरे सुपुर्द कर दूँ। क्योंकि जगन्माता ने बताया ही है कि तुझे उनके बहुत सारे कार्य करने हैं। यदि ये शक्तियाँ तुझमें संचारित हो जाएँगी तो उनका तू अपने कार्यक्षेत्र में उचित उपयोग कर सकेगा। क्यों ठीक है न?"

इस तरह की समस्या का सामना करना, यह तो आध्यात्मिक जगत का सनातन इतिहास रहा है। और यदि इतिहास की ओर नजर डालो जाय तो एक बात हमारे ध्यान में आती है कि इस प्रश्न के सम्बन्ध में केवल एक ही उत्तर सबके समक्ष प्रस्तुत हुआ है। आज नरेन्द्रनाथ के मुख से भी वही प्राचीन उत्तर पुनः उच्चरित हुआ। भगवान रामकृष्ण के प्रश्न का उत्तर देते हुए नरेन्द्रनाथ ने प्रतिप्रश्न किया—"महाराज, क्या इन सिद्धियों के कारण मुझे ईश्वर लाभ करने में कुछ सहायता मिल सकेगी?"

श्रीरामकृष्ण ने कहा—"ईश्वर लाभ के संबंध में तुम्हें भले ही कुछ मदद न भी मिले तो भी ईश्वरलाभ के पश्चात् जब तुम ईश्वर का कार्य करोगे तब इस कार्य में ये सिद्धियाँ अवश्य ही तुम्हें विशेष सहायता प्रदान करेंगी।"

भारत के प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टि डालने पर हमें ज्ञात होता है कि औपनिषदिक काल में नचिकेता, मैत्रेयी आदि साधकों के समक्ष भी यही समस्या उपस्थित हुई थी। वैसे देखा जाए तो नरेन्द्रनाथ की समस्या अधिक जटिल स्वरूप की थी। क्योंकि नचिकेता तथा मैत्रयी के समक्ष सिर्फ व्यक्तिगत सुखोपभोग का प्रलोभन था, जबकि करुणाशील नरेन्द्रनाथ के समक्ष यह समस्या लोक-कल्याण हेतु उपस्थित साधन के रूप में उपस्थित थी। परन्तु नरेन्द्रनाथ ने अपनी भावनाओं को तथा अपने मन पर काबू पाते हुए उत्तर दिया—"महाराज, मुझे इन सिद्धियों की आवश्यकता नहीं है। पहले मुझे ईश्वर लाभ कर लेने दें। फिर उन विभूतियों को ग्रहण किया जाय या नहीं इस सम्बन्ध में विचार करूँगा। यदि इन सिद्धियों को प्राप्त करने के पश्चात मैं अपने जीवन के उद्देश्य को भूल जाऊँगा तथा स्वार्थ के वशीभूत होकर उनका गलत उपयोग करने लगूँगा तो सर्वनाश हो जायेगा।

× × ×

उपर्युक्त प्रसंग से स्वामी विवेकानन्द योग-सिद्धियों को किस दृष्टि से देखा करते थे इसका पता चलता है। वे विभूतियों को विष्ठासमान मानते थे यही नहीं, बल्कि वे इस प्रकार भी योग-सिद्धियों को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधाएँ समझते थे। महर्षि पतंजलि ने भी योगसूत्र के 'विभूतिपाद' के ३८ वें सूत्र में यही बातें बतायी हैं - ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः। स्वामी विवेकानन्द अपने राजयोग ग्रन्थ में इस सूत्र का अर्थ बताते हुए कहते हैं—"ये (सिद्धियाँ) समाधि में उपसर्ग (विघ्न) हैं पर व्युत्थान (संसार-अवस्था/भौतिक जीवन) में सिद्धिस्वरूप हैं।" पुनः इसकी व्याख्या करते हुए स्वामी जी बताते हैं—"योगी जानते हैं कि संसार के सभी भोग पुरुष और मन के संयोग द्वारा होते हैं।...पर ये सब सिद्धियाँ उस उच्चतम लक्ष्य अर्थात् उस पवित्र स्वरूप आत्मा के ज्ञान और मुक्ति की प्रतिबन्धक स्वरूप हैं। ये सब तो मानो रास्ते में प्राप्त होने वाली चीजें भर हैं। यदि योगी इन सिद्धियों का त्याग कर दें, तभी वे उस उच्चतम ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। यदि वे इनमें अटक जाएं, तो फिर उनकी उन्नति रूक जाती है।

फिर भी योग साधना के फलस्वरूप तथा श्रीरामकृष्ण देव के कृपाप्रसाद के रूप में स्वामी जी में सिद्धियों का किस तरह आविर्भाव हुआ तथा यथासमय लोककल्याण हेतु उन्होंने उन सिद्धियों का किस तरह सदुपयोग किया इस विषय में हम यहाँ थोड़ी-सी चर्चा करने का प्रयत्न करेंगे—

स्वामी विवेकानन्द के जीवन-चरित्र की ओर दृष्टिपात करने पर हमें पता चलता है कि एकदम बाल्यावस्था से ही उनके अन्दर इस तरह की सिद्धियाँ विद्यमान थीं। उदाहरण के लिए कुछ सिद्धियों का उल्लेख किया जा सकता है - स्वामी जी को अपने शैशवकाल से ही सोने के पहले आँखें बंद करने ही भ्रूमध्य में (भौंहो के मध्य भाग में) एक अपूर्व दिव्य ज्योतिर्बिंदु के दर्शन होते थे, और फिर वे एकाग्र मन से उस दिव्य ज्योतिर्बिंदु में होनेवाले परिवर्तनों का निरीक्षण करते थे। वह अपूर्व बिन्दु विभिन्न रंगों में वृद्धिगत होता हुआ नजर आता था तथा वह बढ़कर पूर्ण बिंबाकार होकर अन्त में वह फूट जाता था तथा एक शुभ्र तरल प्रकाश तत्व उन्हें आपाद मस्तक आच्छादित कर देता था। और उसी क्षण उनकी चेतना लुप्त हो जाती थी तथा वे निद्राभिभूत हो जाते थे। आगे उम्र के बढ़ने के साथ-साथ जब उन्होंने ध्यान-अभ्यास करना प्रारम्भ किया, तब जब भी वे ध्यान हेतु अपनी आँखें बन्द करने, वह ज्योतिर्बिंदु सर्वप्रथम उनके समक्ष आलोकित होता तथा वे उसी पर अपना मन एकाग्र करने। परवर्ती काल में जब श्रीरामकृष्ण ने इस ज्योतिदर्शन की बात सुनी तब वे बोले—"जो लोग ध्यानसिद्ध होते हैं वही इस प्रकार की ज्योति के दर्शन कर पाते हैं।" इसी संदर्भ में एक और बताने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार स्वामी विवेकानन्द स्वयं यह ज्योति देख सकते थे उसी प्रकार वे दूसरों को भी इस ज्योति का दर्शन करवाने में सक्षम थे। क्योंकि जिस व्यक्ति ने पूर्णत्व प्राप्त कर लिया है उसी व्यक्ति के साहचर्य में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। 'लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत्'। (सांख्यसूत्र ४।२४) एक बार स्वामी जी के एक गुरु भ्राता ने अनुरोध किया कि वे उन्हें भी उस दिव्यज्योति का साक्षात् अनुभव करवा दें, तब स्वामी जी ने अपने गुरुबन्धु के मस्तक पर हाथ रखा, तुरन्त ही उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो समस्त बाह्यजगत एक ज्योतिः समुद्र में परिणत हो गया है।

स्वामी जी को होनेवाला दूसरे प्रकार का अनुभव यानी किसी विशिष्ट स्थान पर तथा

विशिष्ट समय पर विशेष व्यक्ति को देखकर स्वामी जी के मन में पूर्वस्मृति का उदय होना। किसी विशिष्ट वस्तु, व्यक्ति या स्थान देखने के साथ ही उन्हें ऐसा लगने लगता मानो वे इन सबसे पूर्व परिचित है, पहले भी उन सबको वे देख चुके हैं। कभी-कभी जब वे अपने मित्रों के साथ किसी स्थान पर एकत्रित हो विभिन्न विषयों पर चर्चा करते, और वह व्यक्ति यदि किसी मित्र या किसी विशेष स्थान या व्यक्ति विशेष के बारे में चर्चा करता, तब स्वामी जी को अनुभव होता मानो वे पहले भी इसी घर में इन्हीं सब व्यक्तियों के साथ इन्हीं सब बिषयों पर चर्चा में सम्मिलित हो चुके हैं तथा तब भी यही व्यक्ति इस बात को बता रहा था। इन सब पूर्वस्मृतियों का कारण बताते हुए वे कहते थे कि—'इस जन्म में मैं जिन-जिन व्यक्तियों या परिस्थितियों के निकट सम्पर्क (सम्बन्ध) में आने वाला था उन सब बातों को मैंने किसी चलचित्र की भाँति जन्म के पूर्व ही देख लिया था तथा जन्म के पश्चात उन्हीं सब बातों की स्मृति मेरे अन्तःकरण में समय-समय पर आजीवन उदित होती रही। और वे बातें मुझे समय-समय पर याद आती रहीं। पतंजलि मुनि भी कहते हैं कि इस तरह की स्मृतियाँ अपरिग्रह में प्रतिष्ठित होने के बाद प्राप्त होती हैं।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः

(साधनपाद ३९)

इस तरह अनेक शक्तियाँ स्वामी जी में जन्मतः ही विद्यमान थीं। और श्रीरामकृष्ण इस बारे में पूर्णतः सचेत थे। उन्हें इस बारे में पूरी जानकारी थी।

एक बार श्री केशवचन्द्र सेन, श्री विजयकृष्ण गोस्वामी आदि प्रतिष्ठित ब्रह्मसमाजी नेतागण श्रीरामकृष्ण के यहाँ एकत्रित थे। युवक नरेन्द्रनाथ भी वहाँ उपस्थित थे। श्रीरामकृष्ण भावावस्था में थे। प्रसन्न मन से वे केशव तथा विजय की तरफ देख रहे थे। तदनंतर उनकी दृष्टि नरेन्द्रनाथ की ओर गयी और स्वामी जी के भावी जीवन का उज्ज्वल चित्र उनके मानसपटल पर अचानक ही प्रतिबिम्बित हो उठा, तथा उनके और केशवचन्द्र सेन आदि के विकसित जीवन की तुलना करते हुए वे अत्यन्त प्रीतिपूर्ण दृष्टि से नरेन्द्रनाथ की ओर देखने लगे। बाद में इस गोष्ठी के समाप्त होने पर उन्होंने कहा—मैंने देखा कि जिस प्रकार की एक शक्ति के विशेष उत्कर्ष के कारण केशव जगद्विख्यात हुआ है उसी प्रकार की अठारह शक्तियाँ अपनी पूर्ण तेजस्विता के साथ नरेन्द्र में विद्यमान हैं। इसके बाद मैंने देखा कि केशव तथा विजय का अन्तःकरण दीपक की ज्योति के समान ज्ञान प्रकाश से आलोकित हो चुका है। तदनंतर नरेन्द्र की ओर देखा तो दिखा कि उसके अन्तःकरण में ज्ञानसूर्य उदित हो चुका है तथा उसके कारण मायामोह का लेशमात्र भी नरेन्द्र के अन्तःकरण से दूर हो चुका है।"

यह बात कितनी सत्य है इसका ज्ञान तो स्वामीजी के जीवन की ओर देखने से ही हमें होता है।

ध्यान-साधना के प्रारम्भिक काल में ही स्वामी जी को इन योग-विभूतियों के आगमन की सूचना मिल चुकी थी। दूर श्रवण आदि सिद्धियाँ उनके मन में विक्षेप उत्पन्न करने लगी थीं। तब श्रीरामकृष्ण ने उन्हें कुछ दिन ध्यान बन्द करने की सलाह दी थी।

श्रीरामकृष्ण जब इस धराधाम पर सदेह अवस्थित थे, उन्हीं दिनों अपने साधनाकाल के दौरान स्वामी जी को अपने अन्दर निर्मित इन योग-शक्तियों की परीक्षा लेने की इच्छा उत्पन्न हुई। उस दिन शिवरात्रि थी। श्रीरामकृष्ण के

कुछ तरुण भक्तों ने उस दिन उपवास रखा था। रात्रि के दस बज रहे थे। ध्यान समाप्त कर स्वामी जी पूजा के आसन पर बैठे थे। वैसे वक्त अकस्मात ही स्वामी जी को इस दिव्य विभूति का तीव्र अनुभव होने लगा। उसे कार्यपरिणत कर उसका परिणाम देखने के उद्देश्य से स्वामी जी ने सामने ही बैठे अपने गुरु भ्राता स्वामी अभेदानन्द से कहा—"मुझे थोड़ी देर स्पर्श करो।" स्वामी विवेकानन्द निश्चल भाव से ध्यानमग्न बैठे थे तथा स्वामी अभेदानन्द भी आँखें बन्द कर अपने दाहिने हाथ से स्वामी जी के दाहिने घुटने को स्पर्श कर बैठे थे। उनका हाथ सतत् कंपायमान हो रहा था। इस तरह एक दो मिनट के पश्चात् स्वामी जी ने आँखें खोलकर पूछा—'बस, तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा था बताओ ?"

अभेदानन्द ने कहा—"जिस तरह एक विद्युत-दंडिका हाथ में पकड़ने पर लगता है कि अपने अन्दर कुछ प्रवेश कर रहा है और हाथ कंपायमान होने लगता है, उसी प्रकार तुम्हें स्पर्श करने के बाद मुझे अनुभव हो रहा था।"

इसके तुरन्त बाद स्वामी अभेदानन्द गहरी ध्यानावस्था में मग्न हो गए। इससे पूर्व इस प्रकार की प्रगाढ़ ध्यानावस्था का अनुभव उन्हें कभी नहीं हुआ था। पता नहीं कैसे यह बात रामकृष्णदेव को ज्ञात हुई। तब उन्होंने स्वामी जी को बुलवाकर कहा—"क्यों रे! अभी कुछ जमा हुआ नहीं, और तूने खर्च करना शुरू कर दिया ? पहले अपने अंदर इन शक्तियों को अच्छी तरह जमा होने दो, फिर उन्हें किस तरह खर्च किया जाय यह अपने आप समझने लगोगे। जगन्माता खुद सब कुछ समझा देंगी।"

इस तरह श्रीरामकृष्णदेव भी स्वामी जी को इन सिद्धियों के उपयोग के बारे में सावधानी बरतने को कहा करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव के लीलावसान के बाद स्वामी जी ने परिव्राजक अवस्था में सम्पूर्ण भारत में भ्रमण किया। देश की स्थिति का अवलोकन किया। भारत की उन्नति तथा वेदान्त के प्रचार के लिए वे अमेरिका गए। यह एक बड़ा इतिहास हो है। तत्पश्चात् 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च, इस लक्ष्य को अपने समक्ष रख 'शिवभाव से जीवसेवा' के मंत्र को धारण कर उन्होंने कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। इन सब कार्यों में समय-समय पर उन्हें इन योग-विभूतियों का साक्षात् अनुभव होने लगा तथा जगन्माता और श्रीठाकुर के आदेशानुसार स्वामी जी ने इनका योग्य स्थानों पर सदुपयोग भी किया।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः। (साधनापाद ३८) पतंजलि मुनि का कथन है कि ब्रह्मचर्य सिद्ध होने से शक्ति प्राप्त होती है। १२ वर्षों तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन करने से मेधानाडी उत्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप अद्भुत स्मरण-शक्ति उत्पन्न होती है। स्वामी विवेकानन्द वैसी ही अद्भुत स्मरणशक्ति के स्वामी थे। अपनी इस अद्भुत स्मरण शक्ति के आधार पर ही उन्होंने अपने इस छोटे से जीवन में कितने ही महान ग्रंथों का अध्ययन किया था। उनकी स्मरणशक्ति के सन्दर्भ में अनेक घटनाएं उनके जीवन में परिलक्षित होती हैं। एक घटना का वर्णन इस प्रकार का है—

जब वे मेरठ में थे, तब वहाँ के एक सार्वजनिक पुस्तकालय से सर जान लुबाँक के साहित्य का एक-एक खंड नित्य ही स्वामी अखंडानन्द उन्हें लाकर देते थे। दूसरे दिन लाये हुए ग्रन्थ का पूर्ण अध्ययन कर उसे वापस करने को कहते तथा दूसरा ग्रन्थ मँगवाते। यह देखकर वाचनालय प्रमुख ने कहा—यह तो ग्रन्थ-वाचन का नाटक मात्र है।" वाचनालय प्रमुख के इस मंतव्य को

स्वामी अखंडानन्द ने स्वामी जी के समक्ष उपस्थित किया। यह सुनकर स्वामी विवेकानन्द तुरन्त ही ग्रन्थालय प्रमुख के पास गए और बोले—"मैंने इन सब ग्रन्थों का एकाग्रतापूर्वक अध्ययन किया है तथा उनमें निपुणता प्राप्त की है। यदि आपको इस विषय में शंका है तो कहीं से भी कोई प्रश्न पूछिये। ग्रन्थालय प्रमुख ने उनके कथन की सत्यता को परखने हेतु उनसे प्रश्न पूछे तथा सटीक उत्तर मिलने पर बहुत प्रभावित हुए। बाद में स्वामी अखंडानन्द द्वारा पूछे जाने पर स्वामी जी ने कहा, "मैं शब्द के बाद शब्द नहीं पढ़ता बल्कि वाक्य के बाद वाक्य या कभी-कभी तो पैरा के बाद पैरा एक ही नजर में देखकर पढ़ डालता हूँ मानो किसी केलिडिस्कोप से देख रहा हूँ।" कैसी थी स्वामीजी की बुद्धि की उड़ान तथा अद्भुत स्मरणशक्ति ? स्वामी जी के शिष्य शरतचन्द्र चक्रवर्ती ने भी अपनी स्मृतियों में स्वामीजी की इन योग-सिद्धियों के बारे में लिखा है। स्वामी जी ने बहुत ही कम समय में इनसायक्लोपिडिया के सभी खंडों का अध्ययन कर उन्हें आत्मसात कर लिया था।

स्वामी जी के पास सभी स्तर के लोग अपनी समस्याओं को लेकर आते थे। स्वामी जी में इस तरह की शक्ति थी कि वे लोगों की समस्याओं को बिना बताये ही समझ जाते थे। योगियों को इस तरह की बातें सहज साध्य होती हैं।

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम्। (विभूतिपाद १९) अर्थात् दूसरे के शरीर के लक्षणों पर निग्रह करने पर उनके मन का ज्ञान होता है। इस बाबत एक घटना की चर्चा हम यहाँ करेंगे—

जब स्वामी जी शिकागो में थे तब उनमें विद्यमान आध्यात्मिक शक्तियों की प्रसिद्धि सुदूर प्रचारित हो चुकी थी। अतः बहुत से लोग उनसे साक्षात्कार लेने हेतु तथा आशीर्वाद की आशा लिए हुए उनके पास आते। सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी गायिका मादाम एम्मा काल्वे भी इसी तरह स्वामी जी की आध्यात्मिक शक्तियों के बारे में सुनकर उनकी शरण में पहुँच गयी थी। १८९४ के मार्च महीने में जब मादाम काल्वे 'मेट्रोपोलिटन ऑपेरा कम्पनी' के साथ शिकागो आयी थी उस समय वे कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर आसीन थीं। फिर भी, उनके जीवन में शांति नहीं थी। उसकी इकलौती पुत्री आग में जलकर मर चुकी थी। काल्वे के मन में भी आत्महत्या कर मृत्यु को वरण करने का विचार था और वे चार बार असफल प्रयत्न भी कर चुकी थीं। सौभाग्यवश अपने किसी मित्र की सलाह पर वे स्वामी जी से मिलने गयीं। उसे बैठक में बिठाया गया। किसी स्वप्नाविष्ट की भांति वे एक कुर्सी पर बैठी हुई थीं। अचानक ही बगल के कमरे से आवाज आयी, "बेटी, अन्दर आओ, डरने की कोई बात नहीं है।" स्वयंचालित यन्त्र के समान काल्वे उस कक्ष में प्रविष्ट हुईं। वह स्वामी जी का अध्ययन कक्ष था। वे एक टेबल के सामने बैठे थे। आगे की घटना का वर्णन काल्वे के ही शब्दों में सुनते हैं। "अन्दर जाने के पहले मुझे बताया गया था कि जब तक वे मुझे कुछ नहीं पूछते, तब तक मैं कुछ भी न बताऊँ। अतः कक्ष में प्रवेश करने के साथ मैं कुछ क्षणों तक निस्तब्ध सी खड़ी रही। उस वक्त वे शांत भाव से ध्यानावस्था में बैठे थे। उनके काशायवस्त्र जमीन तक लटके हुए थे। सिर पर बंधा हुआ साफा थोड़ा-सा आगे की ओर झुका हुआ था, उनकी दृष्टि नीचे जमीन की ओर थी। थोड़ी देर बाद बिना अपनी दृष्टि ऊपर उठाये वे बोले-बेटी! तुम किस तरह अशान्ति के वातावरण से घिरी हुई हो। शांत हो। शांत होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके पश्चात् उन्होंने—जिन्हें मेरा नाम तक ज्ञात नहीं था—अनुत्द्वेग व उदासीनता पूर्ण शांत स्वर में मेरे जीवन की गोपनीय

समस्याओं के बारे में, चिंताओं के बारे में अनेक बातें बतायीं। इनमें कुछ बातें तो वैसी थीं कि मेरे अत्यन्त निकट के मित्रों को भी उनके बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी नहीं थी। यह सुनकर मुझे लगा कि यह सब अलौकिक है अप्राकृतिक है। अन्त में मैंने उनसे पूछा—'आपको ये सब बातें कैसे ज्ञात हुईं ? किसी ने आपको मेरे बारे में बताया क्या ?' मृदु हास्य करते हुए अपनी दृष्टि ऊपर उठाकर उन्होंने मुझे इस तरह देखा मानो मैंने किसी बालक के समान निरर्थक प्रश्न पूछा हो। अत्यन्त सौम्य शब्दों में उन्होंने कहा—मुझे किसी ने भी कुछ नहीं बताया ! और किसी को कुछ बताने की जरूरत ही क्या है ? मैं तो खुली किताब के समान तुम्हारे अन्तरंग को पढ़ सकता हूँ !" इसके पश्चात स्वामी जी ने काल्वे को कुछ उपदेश दिया। उसके व्याधिग्रस्त मन की समस्त चिंताएं दूर हो गयीं और उसका मन पवित्र व शांतिमय भाव से परिपूर्ण हो गया।

स्वामी जी के जीवन के ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया जा सकता है। इसी तरह के एक प्रसंग की हम यहाँ चर्चा करेंगे।

विभूतिपाद में एक सूत्र है **'प्रवृत्त्या लोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २६ ॥—** अर्थात् विशोका वा ज्योतिष्मती। १·३६ वें सूत्र में बतलायी गयी महाज्योति पर संयम करने से सूक्ष्म, व्यवधानयुक्त तथा दूरवर्ती वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द का मन भी इसी तरह विराट तथा सर्वव्यापी बन चुका था। दूर कहीं कोई घटने वाली घटना की जानकारी उन्हें अपने ही स्थान पर बैठे-बैठे हो जाया करती थी। एक बार जब वे बेलुड़ मठ में थे, अचानक एक रात को दो बजे वे अचानक ही हड़बड़ाकर उठ बैठे तथा बरामदे में इधर-उधर घूमने लगे। उनका चेहरा उस वक्त गम्भीर था। जब स्वामी विज्ञानानन्द ने उनकी अस्वस्थता का कारण पूछा तो बोले—'पेसन, (विज्ञानानन्द महाराज को वे पेसन कहा करते थे) मैं अब तक गाढ़ी नींद में सोया हुआ था, अचानक मुझे एक झकझोरनेवाला दृश्य दिखा और मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। मुझे पक्का विश्वास है कि कि विश्व में कहीं भी एक बहुत बड़ी दुर्घटना हो चुकी है, और असंख्य लोग मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। पेसन ! इसी लिए मैं इतना अस्वस्थ हो गया हूँ। अरे रे ! विचारे लोग !

और आश्चर्य ! दूसरे दिन जब सुबह समाचार पत्र खोला गया तो उसमें एक शोकदायक समाचार था। फिजी द्वीप के पास ज्वालामुखी में भयंकर उद्रेक हो चुका था तथा हजारों लोग मृत्यु के ग्रास बन चुके थे। स्वामीजी को जिस वक्त वह दृश्य दिखा था उसी वक्त यह घटना घटित हो रही थी। स्वामी जी बोले—"देख पेसन ! मैंने कहा था न। सत्य का किस तरह मुझे अनुभव हुआ। यह भयंकर दुर्घटना हो रही थी इसीलिए रात को मैं इतना उदास था, दुःखी था। मुझे दुःख के उन स्पंदनों की अनुभूति हो रही थी।"

योगसूत्र के विभूतिपाद में अन्तिम सूत्र है—**सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५६ ॥** अर्थात् सत्व (बुद्धि) जब पुरुष के समान शुद्ध होता है तब कैवल्य की प्राप्ति होती है।

देखा जाय तो यहीं सबसे महान योगजनित विभूति है। स्वामी जी इस सूत्र का स्पष्टीकरण देते हुए कहते हैं—जब आत्मा को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि वह परमात्मा से लेकर जगत के छोटे-से-छोटे परमाणु तक विश्व की किसी भी वस्तु पर अवलंबित नहीं है तभी उसे कैवल्य या पूर्णता प्राप्त होती है। यह तभी संभव है जब शुद्ध-अशुद्ध

का मिश्रण जो सत्व अर्थात् बुद्धि है वह पुरुष की भाँति ही शुद्ध बन जाती है। तभी इस सत्व में शुद्ध तथा निर्गुण स्वरूप का पुरुष प्रतिबिंबित होता है।

स्वामी विवेकानन्द अब सदा ही ध्यान में मग्न रहने लगे थे। वे श्रीरामकृष्ण तथा माँ जगदम्बा के चरणों में लीन होने की व्यग्रता प्रकट करने लगे थे। प्रत्येक विषय में मानो एक उदासीन सा भाव उनके मन में व्याप्त हो चुका था। यह सब देखकर बाकी गुरुभ्राताओं को श्रीरामकृष्ण की भविष्य-वाणी याद आने लगी। उन्होंने कहा था—"जब वह स्वयं को जान जाएगा तब वह इस शरीर का त्याग कर देगा।" और एक दिन एक गुरुबन्धु ने स्वामी जी से इस विषय में पूछा भी। और उत्तर मिला—"हाँ, मैं समझ चुका हूँ कि मैं कौन हूँ।" अब उनके मन में सिर्फ वही, स्वयं का स्वरूप प्रति-बिम्बित हो रहा था। अब वे कवल्य प्राप्ति की ओर अग्रसर हो चुके थे।

[मूलतः मराठी भाषा में लिखित उपर्युक्त लेख की अनुवादिका हैं—सौ० ज्योत्सना किरवई, नागपुर—सं०]

□

—सिद्धियों को विष्ठातुल्य हेय जानकर उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। साधना और संयम का अभ्यास करते हुए कभी-कभी वे अपने आप आ जाती हैं, परन्तु जो उनकी ओर ध्यान देता है वह उन्हीं में अटक जाता है, भगवान् की ओर अग्रसर नहीं हो पाता।

एक बार एक मनुष्य जंगल में गया। वहाँ उसने एक वृक्ष पर एक सुन्दर प्राणी देखा। बाद में उसने उसके विषय में एक मित्र को बताया और कहा, "भाई, जंगल में एक वृक्ष पर मैंने एक लाल रंग का प्राणी देखा।" मित्र बोला "मैंने भी उसे देखा है। तुम उसे लाल क्यों कहते हो ? वह तो हरा है।" एक तीसरे व्यक्ति ने कहा, "अरे नहीं नहीं, तुम उसे हरा क्यों कहते हो ? वह तो पीला है।" इसके बाद अन्य लोग उस जन्तु को बैंगनी, नीला या काला कहकर वर्णन करने लगे। अब इस रंग की बात को लेकर उनमें झगड़ा होने लगा। अन्त में वे उस वृक्ष के पास पहुँचे और उन्होंने एक व्यक्ति को उसके नीचे बैठा देखा। उनके प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा, "मैं इसी वृक्ष के नीचे रहता हूँ और उस जन्तु को खूब अच्छी तरह जानता हूँ। तुम लोग उसके विषय में जो कुछ कह रहे हो वह सब सत्य है। कभी वह लाल होती है, कभी हरा, कभी पीला, कभी नीला और कभी अन्यान्य रंगों का। वह गिरगिट है। कभी-कभी मैं देखता हूँ कि उसका कोई भी रंग नहीं है।"

इसी प्रकार जो निरन्तर भगवान् का चिन्तन करता है वह उनके रूपों तथा अव-स्थाओं को जान सकता है। भगवान् के अपने गुण हैं, साथ ही वे निर्गुण भी हैं। केवल वही व्यक्ति, जो वृक्ष के नीचे रहता है, जानता है कि गिरगिट विभिन्न रंगों में दिखाई दे सकता है, और कभी-कभी एकदम रंगहीन हो जाता है। दूसरे लोग, जो पूरे सत्य को नहीं जानते, परस्पर झगड़ा करते रहते हैं और कष्ट पाते हैं।

—श्रीरामकृष्ण देव

चिन्तन :

नेतृत्व का गुण

—स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर विचारोत्तेजक तथा उद्बोधक लेख लिखे थे, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय-समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख 'आकाशवाणी' रायपुर से साभार गृहीत है। —सं०)

आज मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों में जैसे गिरावट आयी है, वैसे ही उसके उस पक्ष में भी, जिसमें से नेतृत्व का गुण प्रकट होता है। 'नेतृत्व' का अर्थ होता है 'ले जाने का भाव' अर्थात् जो दूसरों को आगे ले जा सकता है, उसमें नेतृत्व के गुण हैं—ऐसा कहा जा सकता है। इसी को सामान्य बोल-चाल की भाषा में 'नेता' कहा जाता है।

आज से कुछ समय पहले तक या यों कह लीजिए जब तक हमारे देश को आजादी नहीं मिली थी तबतक 'नेता' शब्द अत्यन्त सम्मान का द्योतक था। सुभाषचन्द्र बोस जैसे शूर-वीर और आत्म-त्यागियों से 'नेता' शब्द सम्मानित हुआ था और आज भी हम उन्हें 'नेताजी' के रूप में सम्बोधित करते हैं। पर आजादी के बाद से नेता शब्द क्रमशः मखौल और व्यंग्य का पर्याय बनता जा रहा है। कारण स्पष्ट है। नेतृत्व के वे गुण जब व्यक्ति में नहीं रह जाते, जिनके बल पर वह दूसरों की श्रद्धा को आकृष्ट करता है, तब डण्डे या पैसे के जोर पर ही वह दूसरों को अपने स्वार्थ के लिए बटोरने की चेष्टा करता है और 'नेता' कहलाता है।

आज अन्य सभी वस्तुओं की भाँति 'नेता' शब्द का भी अवमूल्यन हुआ है। पहले नेता कहने से एक ऐसे व्यक्ति का चित्र आँखों के सामने उभरता था, जो आत्मत्यागी हो, जो समाज या देश के कल्याण के लिए अपना सब कुछ खोने के लिए प्रस्तुत हो, जो अपने साथियों का दु:ख-दर्द मिटाने के लिए, स्वयं तक को मिटा देने के लिए तैयार हो। ऐसा व्यक्ति आत्म-विज्ञापन नहीं करता था कि मैं नेता हूँ। उसके गुणों का कीर्ति-सौरभ बिना घोषणा के चारों ओर बिखर जाता था, जैसे फूल के खिलने पर उसकी सुगन्ध वायुमण्डल में छा जाती है। और तब लोगों को हाँककर लाने की जरूरत

नहीं पड़ती थी, वे तो परागलोभी मधुकरों की भाँति स्वयं ही खिचकर उनके पास चले आते थे और उनके जीवन में जलती हुई बलिदान की आग को देख त्याग और देशभक्ति की प्रेरणा पाते थे। पर आज वह माहौल नहीं रहा। पहले 'नेता' पदवी प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अनुशासन के तप में अपने को तपाता था, पर आज सत्ता पाने की अन्धी दौड़ में भाग लेने हेतु खड़ा हो जाने को ही नेता मान लिया जाता है। जो येन-केन-प्रकारेण कोई काम करवा सके, वह नेता है। जो धन से किसी को खरीद सके, वह नेता है। जो अखबारों में अपने बयान छपवा सके, वह नेता है। जो डण्डे के बल पर दूसरों पर धौंस जमाता रहे, वह नेता है। जो दूसरों की टाँग खींचकर गिरा सके, वह नेता है। जो भाषणों में अच्छी-खासी गप्प हाँक सके और झूठे आश्वासनों के द्वारा जनता को प्रलोभित कर उनका वोट खींच सके, वह नेता है। जो स्वयं पैसे डकारकर एक निरपराधी को जेल भिजवा सके, वह नेता है। जो झूठ बोलता हुआ भी सत्य की दुहाई देता रहे, वह नेता है।

ऐसी परिस्थितियों में नेतृत्व के गुण भला कहाँ से प्रकट हो पायेंगे? जो सच्चा त्यागी है और अपने साथियों का कल्याण चाहता है, उसके पास वाग्जाल नहीं होता, चाटुकारिता नहीं होती, वह झूठे आश्वासन देना पसन्द नहीं करता। उसकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं होता। उसके पीछे आज के युग में भले ही भीड़ नहीं दिखायी देती, पर आज भी वह अपने नेतृत्व के गुणों से दूसरों में चिनगारी पैदा कर दे सकता है। आवश्यकता है, तो मानवीय गुणों में मूलभूत आस्था की।

अंगरेजी में कहा गया है—"Some are born great, some achieve greatness, and on some greatness is thrushted"— अर्थात् कुछ लोग महान ही पैदा होते हैं, कुछ लोग महानता प्राप्त करते हैं और कुछ पर महानता थोपी जाती है। तो, यही बात नेतृत्व के लिए भी कही जा सकती है—कोई नेता ही पैदा होता है, कोई नेतापन अर्जित करता है और किसी पर नेतापन थोपा जाता है। आज-कल इस तृतीय श्रेणी की भरमार है, जहाँ थोपे हुए नेतापन का मुखौटा लगाकर आचारहीन और भ्रष्ट लोग समाज में नेता का सम्मान पा रहे हैं। इसीलिए अच्छी-अच्छी योजनाओं के बावजूद देश उठ नहीं पा रहा है। देश का उत्थान नेतृत्व के सच्चे गुणों की अभिव्यक्ति से ही हो सकता है, केवल नारों के थोथे शोर-शराबे से नहीं।

□

प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है।

बाह्य एवं आन्तर प्रकृति को वशीभूत करके इस अन्तःस्थ ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

—स्वामी विवेकानन्द

गाँधी शांति पुरस्कार
वर्ष १९९८

प्रशस्ति-पत्र

रामकृष्ण मिशन

[विगत १३ फरवरी, १९९९ को भारत के राष्ट्रपति डॉ० के० आर० नारायणन् ने रामकृष्ण मिशन को गाँधी शान्ति पुरस्कार प्रदान किया। रामकृष्ण मिशन के परमाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन की ओर से कलकत्ते के राजभवन में यह पुरस्कार ग्रहण किया।

महात्मा गाँधी शान्ति, अहिंसा, स्वतन्त्रता और सहिष्णुता के एक प्रबल पक्षधर थे। शान्ति और सद्भाव के प्रति विश्व-स्तर पर गाँधीवादी दृष्टिकोण से किये जा रहे योगदान को समुचित रूप से स्वीकार करने के निमित्त भारत सरकार ने १९९५ ई० में अहिंसा और अन्य गाँधीवादी उपायों के द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय गाँधी शान्ति पुरस्कार की शुरुआत की। एक वार्षिक पुरस्कार के रूप में यह भारत सरकार द्वारा किसी क्षेत्र में दिया जाने वाला सर्वोच्च पुरस्कार है। पुरस्कार का निर्णय एक जूरी द्वारा होता है जिसमें भारत के प्रधान मंत्री, लोक सभा में विपक्ष के नेता, भारत के मुख्य न्यायाधीश और दो अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति होते हैं।

पुरस्कार में एक करोड़ रुपये की नकद राशि, एक प्रशस्ति पत्र और एक स्मृतिचिह्न दिया जाता है। यह राष्ट्रीयता, प्रजाति, पंथ अथवा लिंग पर ध्यान दिये बिना सभी व्यक्तियों के लिए खुला है।

पुरस्कार उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जिसने निःस्वार्थ भाव से शान्ति-अहिंसा और मानव विशेषकर समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के कष्ट को दूर करने के लिए कार्य किया हो तथा सामाजिक न्याय और सद्भावना की स्थापना हेतु अपना योगदान दिया हो।

यह प्रथम अवसर है जब यह गौरवपूर्ण पुरस्कार किसी व्यक्ति को न देकर एक संस्था को प्रदान किया गया है। और वह संस्था है विश्वविख्यात रामकृष्ण मिशन। —सं०]

सत्य और अहिंसा की रक्षा, रोग और दुःख का निवारण तथा भाग्यहीन और वंचितों का पुनर्वास ऐसी कुछ चिरस्थायी चुनौतियाँ हैं जिनका सामना मानव जाति को करना पड़ रहा है। महात्मा गाँधी हमारे समय की उन महान आत्माओं में से थे जिन्होंने ऐसी निरन्तर बढ़ती हुई समस्याओं को उठाया।

गाँधी जी हमारे इतिहास और विरासत की

एक संतान थे। कहा जाता है 'भारत को छोड़कर अन्य कोई देश और हिन्दू धर्म के अलावा कोई अन्य धर्म गांधी को पैदा नहीं कर सकता था।" गांधीजी समाजसेवक और कर्मयोगी भी थे। उनके लिए देश और धर्म दो आँखें थीं और उनका जीवन ही उनका संदेश था।

भारत सरकार द्वारा संस्थापित गांधी शांति पुरस्कार सही अर्थों में ऐसे महानुभावों का सम्मान करता है जो गांधीवादी विश्व दर्शन को परिलक्षित करने वाली विचारधाराओं और क्रियाकलापों के प्रति समर्पित हैं। प्रथम बार यह पुरस्कार एक संस्था अर्थात रामकृष्ण मिशन को प्रदान किया जा रहा है। मई १८९७ में स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित यह मिशन श्री रामकृष्ण परम्हंस के संदेशों को प्रतिबिम्बित करता है जिनका जीवन ही महात्मा गांधी के शब्दों में धर्ममय है।

श्री रामकृष्ण और उनके महान शिष्य स्वामी विवेकानन्द भारतीय चरित्र के सच्चे प्रतीक थे। वे आध्यात्मिक शक्ति, वैज्ञानिक मानस, सब के प्रति करुणा और विश्वबंधुत्व के साकार रूप थे। स्वामी विवेकानन्द ने ही श्री रामकृष्ण के सभी धर्मों की एकता के संदेश को एक आध्यात्मिक आंदोलन का रूप दिया जिसमें कहा गया कि ईश्वरानुभूति की प्राप्ति विश्व में पीड़ा और दुःख को मुक्त करने के उद्देश्य से किये जाने वाले सामाजिक क्रिया के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। प्राचीन वेदांतिक प्रज्ञा से आधुनिक वैज्ञानिक मानस तक स्वामी विवेकानन्द की व्याख्या ने आध्यात्मिक और वैज्ञानिक ज्ञान के बीच सेतु का निर्माण किया। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार धर्म विज्ञान भी है, और आधुनिक विज्ञान के अनेक निष्कर्षों में वेदान्त की ध्वनि देखी जा सकती है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस युग में, सौंदर्य-परक और आध्यात्मिक जीवन का साथ-साथ विकास किया जाना चाहिए। मनुष्य तेजी से घूम रहे कुम्हार के चाक पर केवल मृत्तिका नहीं है। वह अपने सामाजिक परिवेश का स्वामी है तथा एक गौरवशाली अतीत का उत्तराधिकारी। उसके पास एक जिज्ञासु मस्तिष्क, एक अन्तदर्शी मन, एक अतिसंवेदनशील आत्मा और सूक्ष्म अन्तःकरण है। उसके लिए जीवन वृक्ष उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि इस्पात का ग्रिड। इस आदर्श के महत्व को अनुभव करके रामकृष्ण मिशन ने हमारी सांस्कृतिक विरासत पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो हमारे गौरवशाली अतीत पर प्रकाश डालती है। मिशन ने हमें सौंदर्य के उस मन्दिर के दर्शन कराए हैं जहाँ हमारा जन्म हुआ है।

जो लोग यह कहते हैं "अस्ति ब्रह्मेति सद् वेदः परोक्षम् ज्ञानम् एव तत्" और जो लोग कहते हैं "अहम ब्रह्मेति सद् वेदः अपरोक्षमेवतत् तु कथ्यते" उनमें जमीन—आसमान का अन्तर है। "ईश्वर का अस्तित्व है" ऐसा कहने के स्थान पर, यदि व्यक्तियों को उनके अन्दर विद्यमान ईश्वर से साक्षात्कार करने में सहायता की जाए तो ईश्वरीय ज्योति के प्रकाश में मनुष्य की आत्मा भी

खिल उठेगी। मनुष्य हड्डियों का एक ढाँचा मात्र नहीं रह जाएगा। अपितु सत्य का अग्रदूत बन जाएगा। परमात्मा से साक्षात्कार, ईश्वरीय गहराई का अनुमान और करुणामय दृष्टिकोण का विकास धर्म के सारतत्व हैं। विवेकानन्द आत्मा के पैगम्बर थे जो ईश्वर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध जोड़ने के इच्छुक थे। उनके लिए सामाजिक और आध्यामिक दोनों अर्थों में "नर सेवा" "नारायण सेवा" थी।

स्पष्टत: विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन ने सदैव कार्य और सेवा पर ध्यान केन्द्रित किया है। मिशन ने देश और विदेश में सेवा कार्य के जिन अनेक क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की है उनमें शामिल हैं: प्राकृतिक आपदाओं से पीड़ित लोगों की सहायता और पुनर्वास, शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से बच्चों और युवकों की सेवा, कल्याण केन्द्रों की स्थापना के द्वारा आदिवासियों की तत्काल आवश्यकताओं की पूर्ति, चिकित्सा सेवा के माध्यम से कष्टों का निवारण तथा धार्मिक सद्भावना के प्रचार-प्रसार के द्वारा साम्प्रदायिक सद्भाव और भाईचारे को बढ़ावा। अपनी पहल पर और अपनी सहोदर संस्थाओं श्री सारदा मठ और रामकृष्ण शारदा मिशन के द्वारा उसने महिला उत्थान में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस समय रामकृष्ण मिशन की ३७ शाखाएँ है तथा वह अस्पतालों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, औषधालयों, अनाथालयों, होस्टलों और ग्रामीण तथा जनजातीय विकास केन्द्रों जैसी विभिन्न संस्थाओं का संचालन करता है।

रामकृष्ण मिशन देश व विदेश के लोगो में शांति व प्रसन्नता लाने का एक बहुत बड़ा स्रोत बन गया है, क्योंकि यह ईश्वर प्राप्ति के साधन के रूप में नि:स्वार्थ सेवा पर विशेष बल देता है। रामकृष्ण मिशन द्वारा दी जा रही सेवाएँ सभी जातियों, धर्मों और भाषाओं के लोगों के लिए उपलब्ध हैं। भारत जैसे विशाल देश में, जहाँ पर विभिन्न धार्मिक संप्रदाय व समुदाय रहते हैं, एक—दूसरे के प्रति सहिष्णुता व बंधुत्व के विचार का संपोषण अत्यधिक प्रासंगिक है। गांधी जी ने जीवन पर्यन्त इसी आदर्श का संवर्धन किया।

रामकृष्ण मिशन नि:स्वार्थ और सक्रिय समाज सेवा की गांधीवादी भावना को चरितार्थ करता है। वर्ष १९९८ का गांधी शांति पुरस्कार रामकृष्ण मिशन को प्रदान करके भारत सरकार ने एक ऐसे संगठन का सम्मान किया है जिसने समर्पण की भावना से विगत शताब्दी से मानवता की सेवा की है, जो गांधीवादी विचार और व्यवहार को परिलक्षित करता है।

श्रीरामकृष्ण मठ

मयलापुर, चेन्नई-६०० ००४

फोन-४९४१२३१, ४९४१९५९ फैक्स : ४९३४५८९

Website : www. Sriramakrishna Math. org

email : srkmath @ vsnl.com

८ जनवरी, १९९९

प्रिय बन्धु,

स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा उपदेशों से प्रत्येक अध्येता के लिए विवेकानन्दार इल्लम एक पुनीत भवन तथा तीर्थस्थान है। आपको विदित होगा ही कि सौ वर्ष पूर्व, फरवरी १८९७ ई० में स्वामी विवेकानन्द चेन्नै के आइस हाऊस या कैसल कर्नन नामक इसी बंगले में पधारे थे। उन्होंने यहाँ पूरे नौ दिन निवास करते हुए बहुत-से आगन्तुकों से भेंट की, भजन गाये, प्रार्थना की और ध्यान किया। यह स्थान अब भी उनकी अदृश्य तथा दिव्य उपस्थिति से स्पन्दित है।

उन्होंने इसमें ६ से १४ फरवरी तक निवास किया तथा भारत के पुनर्निर्माण हेतु भावोत्तेजक भाषण दिये, जो अब 'भारतीय व्याख्यान' नामक पुस्तक में उपलब्ध हैं। फिर १८९७ ई० में स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई तथा एक महान सन्त स्वामी रामकृष्णानन्द के तत्त्वावधान में यहाँ रामकृष्ण मठ की स्थापना हुई, जो १९०६ ई० तक इसी पुनीत भवन में से चलता रहा। इस प्रकार यह भवन दक्षिण भारत में रामकृष्ण संघ के प्रथम केन्द्र का निवास होने के साथ ही एक ऐतिहासिक स्थल भी है, जहाँ से स्वामीजी ने पूरे राष्ट्र को सन्देश दिया।

हम यहाँ एक स्थायी प्रदर्शनी बनाना चाहते हैं, जिसमें स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा सन्देश और भारतीय संस्कृति के उच्च तत्त्वों को प्रदर्शित किया जा सके। हमारी अभिलाषा है कि इसे एक ऐसा केन्द्र बनाया जाए, जहाँ से स्वामीजी के जीवनदायिनी सन्देश को पूर्णाकार चित्रों, सुन्दर तैलचित्रों, मॉडलों, वीडियोग्राफ और फिल्मों द्वारा प्रचारित किया जाए।

यह भवन १८४२ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के दौरान निर्मित हुआ था और सबसे पहले तो इसका समुचित जीर्णोद्धार आवश्यक है। इस परियोजना में लगभग १.५ करोड़ रुपयों की लागत आयेगी। इसका कार्य शीघ्र ही आरम्भ होने जा रहा है, अतः आपसे अनुरोध है कि इस पुण्य कार्य में उदारतापूर्वक सहयोग करके आप श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद तथा विवेकानन्द-अनुरागियों की कृतज्ञता के भाजन बनें। सभी प्रकार के दान आयकर से मुक्त हैं। चेक या ड्राफ्ट कृपया 'रामकृष्ण मठ, चेन्नै' के नाम से भेजें।

मानवता की सेवा में आपका

स्वामी गौतमानन्द

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा बैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण सस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.१४-८३

कुछ संग्राह्य पुस्तकें

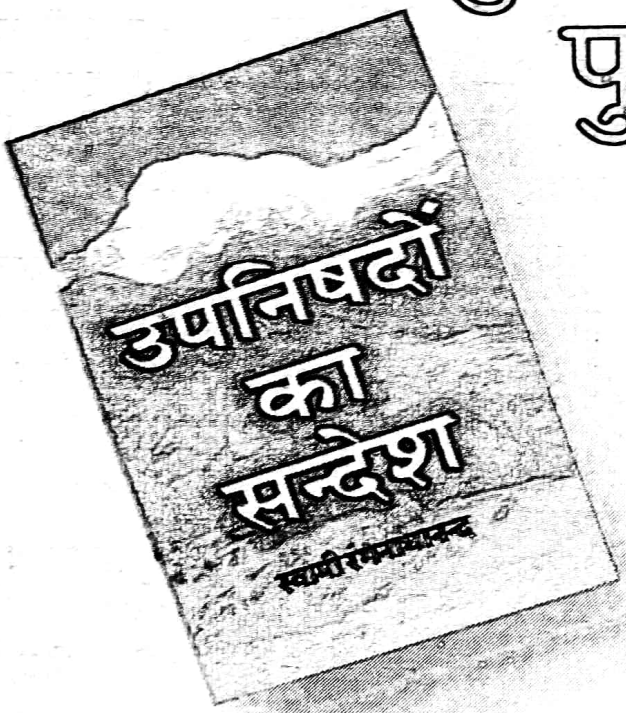

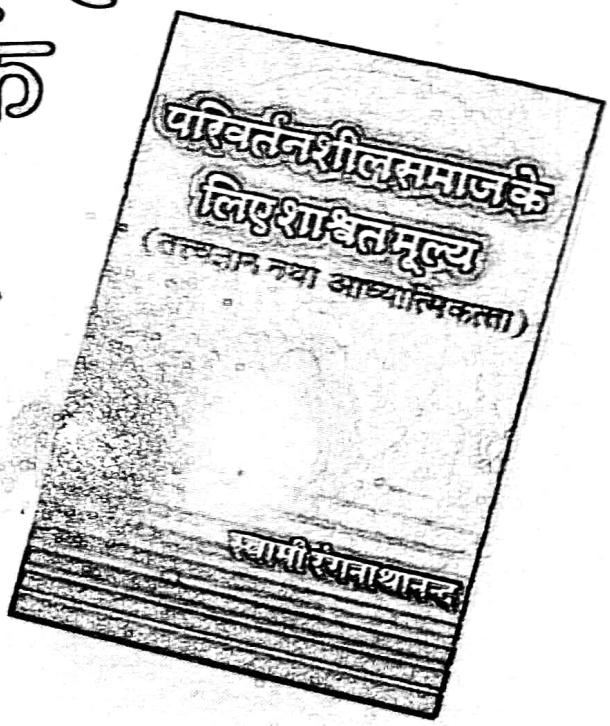

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ